

पूज्यपाद देवनन्दी का संस्कृत-व्याकरण को योगदान

—डा० प्रभा कुमारी

पाणिनि के परवर्ती वैयाकरणों में जैन विद्वानों की प्रधानता रही है। जैनाचार्यों द्वारा रचित व्याकरण-ग्रन्थों में चार व्याकरण ग्रन्थ प्रमुख हैं—

१. जैनेन्द्र-व्याकरण
२. शाकटायन-व्याकरण
३. सिद्धहैम-शब्दानुशासन
४. मलयगिरि-शब्दानुशासन

जैनाचार्यों द्वारा रचित उपलब्ध व्याकरण-ग्रन्थों में काल की दृष्टि से जैनेन्द्र-व्याकरण सर्वप्रथम है। इस व्याकरण ग्रन्थ के रचयिता पूज्यपाद देवनन्दी हैं। वे कर्नाटक के निवासी थे।^१ उनका समय ईसा की ५ वीं शताब्दी है।^२ जैन सम्प्रदाय के विद्वान् की कृति होने के कारण जैन सम्प्रदाय में तो जैनेन्द्र-व्याकरण की प्रसिद्धि थी ही, साथ ही अन्य धर्मानुयायी विद्वानों ने भी इस ग्रन्थ के कर्ता का आदरपूर्वक स्मरण किया है। मुग्धबोध के रचयिता बोपदेव (१३ वीं शताब्दी ई०) ने उनको पाणिनि आदि महान् वैयाकरणों की कोटि में रखा है—

इन्द्रश्चन्द्रः काशकृत्स्नापिशली शाकटायनः।

पाणिन्यमरजैनेन्द्रा जयन्त्यष्टादिशब्दिकाः॥^३

उनके द्वारा रचित यह श्लोक १३वीं शताब्दी ई० में पूज्यपाद देवनन्दी की कथा का परिचायक है।

पूज्यपाद देवनन्दी-कृत व्याकरण विषयक रचनाएँ—

जैनेन्द्र-व्याकरण के अतिरिक्त पूज्यपाद देवनन्दी ने उम पर जैनेन्द्र-न्यास की रचना की जो सम्प्रति अनुपलब्ध है। पं० युधिष्ठिर मीमांसक ने पूज्यपाद देवनन्दी द्वारा रचे गए व्याकरण-विषयक ग्रन्थों का उल्लेख किया है, जिनके नाम इस प्रकार हैं—^४

१. धातुपाठमूल
२. धातुपारायण
३. गणपाठ
४. उणादिसूत्र
५. लिङ्गानुशासन
६. लिङ्गानुशासन-व्याख्या

१. प्रेमी, नाथूराम, जैन साहित्य और इतिहास, बम्बई, १९५६, पृष्ठ ५०-५१. उपाध्याय, ब्रजदेव, संस्कृत शास्त्रों का इतिहास, वाराणसी, १९६६, पृ० ५७७-५७८. शर्मा, एस० चार०, जैनिज्म एन्ड कर्नाटक कल्चर, धारवार, १९४०, पृ० ७२.
२. पाठक, के०बी०; जैन शाकटायन कन्टम्परेरी विद अमोघवर्ष-], इन्डियन एन्टीक्वेरी, खण्ड ४३, बम्बई, १९१४, पृ० २१०-२११. ग्राम्यकर, के० बी०, ए डिक्शनरी ऑफ सस्कृत ग्रामर, बड़ोदा, १९६१, पृ० १५०. बेत्वाल्कर, एम० के०, सिस्टम्स ऑफ सस्कृत ग्रामर, भारतीय विद्या प्रकाशन, १९७६, पृ० ५३. अग्रवाल, बासुदेवशरण, जैनेन्द्र महावृत्ति, सम्पा० शम्भुनाथ त्रिपाठी. भारतीय ज्ञानपीठ, काशी, १९५६. भूमिका, पृ०७ शास्त्री, महामहोपाध्याय, हरप्रसाद ए डेस्कप्टिव केटेलग ऑफ द संस्कृत मैनुस्क्रिप्ट्स, ख० ६. कलकत्ता, १९३१, प्राक्कथन, पृ०५२. मीमांसक, युधिष्ठिर, संस्कृत-व्याकरण शास्त्र का इतिहास, प्रथम भाग, हरयाणा, विक्रम संवत्, २०३०, पृ० ४४६-४५१.
३. बोपदेव, कविकल्पद्रुम, सम्पा० गजानन बालकृष्ण पलसुले, पूना १९५४, पृ० १.
४. मीमांसक, युधिष्ठिर, ज०म०व० भूमिका, पृ० ५१.

जैन प्राच्य विद्याएँ

१३१

७. वार्तिक-पाठ
८. परिभाषापाठ, और
९. शिक्षा सूत्र

जैनेन्द्र-व्याकरण का परिमाण, संस्करण तथा स्वरूप—

जैनाचार्यों द्वारा रचित उपलब्ध व्याकरण-ग्रन्थों में जैनेन्द्र-व्याकरण सबसे प्राचीन है। इस व्याकरण के दो प्रकार के सूत्रपाठ उपलब्ध होते हैं—

१. लघुपाठ (औदीच्य संस्करण)
२. बृहत्-पाठ (दाक्षिणात्य संस्करण)

लघुपाठ ही मूल सूत्रपाठ है तथा इसके रचयिता पूज्यपाद देवनन्दी हैं। इस लघु सूत्रपाठ में ५ अध्याय हैं तथा प्रत्येक अध्याय में ४ पाद हैं। इन २० पादों में ३०६३ सूत्र हैं। लघुपाठ पर अभयनन्दी ने महावृत्ति की रचना की है, जो भारतीय ज्ञानपीठ, काशी से प्रकाशित हुई है। इस सूत्रपाठ पर श्रुतकीर्ति ने पंचवस्तु नामक प्रक्रिया लिखी।

जैनेन्द्र-व्याकरण की रचना के लगभग ५०० वर्ष पश्चात् गुणनन्दी ने जैनेन्द्र-व्याकरण के मूल सूत्रपाठ को परिवर्तित एवं परिवर्धित करके बृहत्-पाठ का रूप दिया जिसमें ३७०० सूत्र हैं। इस सूत्रपाठ पर सोमदेवमुनि ने शब्दार्णवचन्द्रिका (१२०५ ई०) नामक टीका की रचना की तथा इस बृहत् पाठ पर किसी अज्ञातनामा लेखक द्वारा रची गई शब्दार्णव-प्रक्रिया भी उपलब्ध है।

पूज्यपाद देवनन्दी का मूल उद्देश्य जैन मतानुयायियों को अपने व्याकरण-ग्रन्थ के माध्यम से संस्कृत-भाषा का शब्द प्रयोग सिखाना था। जैन मतानुयायियों के लिए वैदिक भाषा तथा स्वर-सम्बन्धी नियमों का अनुशासन आवश्यक न था। यही कारण है कि जैनेन्द्र-व्याकरण में उपर्युक्त नियमों का अभाव है। उन्होंने कृत्य प्रत्ययों के अन्तर्गत छान्दस प्रयोगों को भी लौकिक मानकर सिद्ध किया है। इस व्याकरण-ग्रन्थ में जैनेन्द्र महावृत्ति के अन्तर्गत निर्दिष्ट वार्तिकों की संख्या ४६१ है।

पूज्यपाद देवनन्दी ने जैनेन्द्र-व्याकरण में अपने से पूर्ववर्ती श्रीदत्त,^१ यशोभद्र,^२ भूतबलि,^३ प्रभाचन्द्र^४ 'सिद्धसेन'^५ तथा समन्तभद्र^६ नाम के छः आचार्यों के मतों को उद्धृत करते हुए उनका नामोल्लेखपूर्वक स्मरण किया है। यह व्याकरण-ग्रन्थ अष्टाध्यायी के आधार पर रचित एक लक्षण-ग्रन्थ है। इस व्याकरण-ग्रन्थ में सिद्धान्तकौमुदी तथा इसी प्रकार के अन्य ग्रन्थों जैसा सूत्रों का प्रकरणानुसारी वर्गीकरण उपलब्ध नहीं होता है। प्रत्येक प्रकरण के सूत्र सम्पूर्ण व्याकरण-ग्रन्थ में बिखरे हुए हैं। जैनेन्द्र-व्याकरण के स्वतन्त्र व्याकरण-ग्रन्थ होने पर भी पूज्यपाद देवनन्दी ने इस ग्रन्थ में पाणिनीय सूत्रों की रक्षा का पूर्ण प्रयत्न किया है और इसमें वे अधिकतर सफल भी हुए हैं। पूज्यपाद देवनन्दी ने अष्टाध्यायी का अनुकरण करते हुए भी सूत्रों में अपेक्षाकृत संक्षिप्तता, सरलता एवं मौलिकता लाने का प्रयास किया है। एकशेष प्रकरण से सम्बद्ध सूत्रों का इस व्याकरण-ग्रन्थ में सर्वथा अभाव है।^७ जैनेन्द्र-व्याकरण के अधिकतर सूत्र अष्टाध्यायी के आधार पर लिखे गए हैं। डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल के अनुसार "देवनन्दी ने अपनी पंचाध्यायी में पाणिनीय अष्टाध्यायी के सूत्रक्रम में कम से कम फेरफार करके उसे जैसे का तैसा रहने दिया है। केवल सूत्रों के शब्दों में जहाँ-तहाँ परिवर्तन करके सन्तोष कर लिया है।"^८ जैनेन्द्र व्याकरण में अनेक ऐसे सूत्र विद्यमान हैं जो अष्टाध्यायी के एक सूत्र के दो भाग करके व्याकरण में समाविष्ट किए गए हैं। इस प्रकार की विधि का प्रयोग करके पूज्यपाद देवनन्दी ने सूत्रों को सरल एवं स्पष्ट कर दिया है। कहीं-कहीं पर अष्टाध्यायी के दो या दो से अधिक सूत्रों का एक सूत्र में समावेश करने की प्रवृत्ति भी दृष्टिगोचर होती है, जैसा कि निम्न तालिका से स्पष्ट है—

१. गुणे श्रीदत्तस्याऽस्त्रियाम्, जैनेन्द्र व्याकरण १/४/३४.
२. कृषिभृजां यशोभद्रस्य, वही, २/१/६६.
३. राद् भूतबलेः, वही ३/४/८३.
४. रात्रेः कृति प्रभाचन्द्रस्य, वही, ४/३/१००.
५. वेत्तेः सिद्धसेनस्य, वही, ५/१/७.
६. चतुष्टयं समन्तभद्रस्य, वही, ५/४/१४०.
७. स्थाभाविकत्वादभिधानस्यैकशेषानारम्भः, जै० व्या० १/१/१००.
८. भद्र वास, वासुदेवशरण, जै० म० वृ०, भूमिका, पृ० १२.

१. एक सूत्र के दो भाग—

जं० व्या०	अष्टा०
१. केरेडः, ४/३/५७. प्रात्, ४/३/५८.	एङ्, ह्रस्वात्सम्बुद्धेः, ६/१/६६
२. क्षिज्योः, ४/३/६८ शक्ती, ४/३/६९	क्षययज्ययो शक्यार्थे, ६/१/८१
३. जः, १/२/५३. नानोः, १/२/५४	नानोर्ज्ञ, १/३/५८.
४. टिदादिः, १/१/५३. किदन्तः, १/१/५४.	आद्यन्ती टकिती, १/१/४६.
५. परिमाणाद्भृदुपि, ३/१/२६ न बिस्ताचितकम्बल्यात्, ३/१/२७.	अपरिमाणबिस्ताचितकम्बल्येभ्यो न तद्धित लुकि, ४/१/२२

२. दो सूत्रों का एक सूत्र —

जं० व्या०	अष्टा०
१. ईप्केत्यव्यवाये पूर्वपरयोः, १/१/६०.	तस्मिन्निति निर्दिष्टे पूर्वस्य, १/१/६६. तस्मादित्युत्तरस्य, १/१/६७.
२. प्रमाणासत्योः, २/४/३६.	समासत्तौ, ३/४/५०. प्रमाणे च, ३/४/५१.
३. भक्ष्यान्नाभ्यामिश्रणव्यञ्जने, १/३/३०.	अन्नेन व्यञ्जनम्, २/१/३४. भक्ष्येण मिश्रीकरणम्, २/१/३५.
४. भूषाऽपरिग्रहेऽलमन्तः, १/२/१३५.	भूषणेऽलम्, १/४/६४. अन्तरपरिग्रहे, १/४/६५.
५. यावद्यथावधृत्यसादृश्ये, १/३/६.	यथाऽसादृश्ये, २/१/७. यावदवधारणे, २/१/८.

३. जैनेन्द्र-व्याकरण में कहीं-कहीं पर वार्तिकों का ही प्रयोग किया है एवं कहीं-कहीं पर कात्यायन के वार्तिकों को सूत्र रूप में परिवर्तित कर दिया है। इस संदर्भ में निम्नलिखित सूत्र विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं :—

जं० व्या०	अष्टा०
१. किरतेर्हर्षजीविकाकुलायकरणे १/२/३३.	किरतेर्हर्षजीविकाकुलायकरणेष्विति वक्तव्यम् १/३/२१ वा०.
२. कृत्ति, १/३/७१.	कृद्योगा च षष्ठी समस्यत इति वक्तव्यम्, २/२/८ वा०.
३. ग्रहेरः, २/२/१३.	अच्प्रकरणे शक्तिलांगलांकुशयष्टितोमरघटघटीघनुष्णु ग्रहेरुपसंख्यानम्, ३/२/९ वा०.
४. न प्रतिपदम्, १/३/७३.	प्रतिपदविधाना च षष्ठी न समस्यत इति वक्तव्यम्, २/२/१० वा.

जं० व्या०

अष्टा०

५. श्वाशमचर्मणां सङ्कोचविकारकोसेषु, ४/४/१३२.

अश्मनो विकार उपसंख्यानम्,
चर्मणः कोश उपसंख्यानम्,
शुनः संकोच उपसंख्यानम्, ६/४/१४४ वा०

४. कभी-कभी पूज्यपाद देवन्दी ने अष्टाध्यायी के सूत्र और उस पर कात्यायन द्वारा रचित वार्तिक को मिलाकर एक नए सूत्र का रूप दिया है :—

जं० व्या०

अष्टा०

१. परस्पराभ्योभ्येतरैरे, १/२/१०.

इतरेतरान्योन्योपपदाच्च, १/३/१६.
परस्परोपपदाच्चेति वक्तव्यम्, १/३/१६ वा०.

२. पूर्वावरसदृशकलहनिपुणमिश्रश्लक्ष्णसमैः, १/३/२८.

पूर्वसदृशसमोनाथकलहनिपुणमिश्रश्लक्ष्णैः, २/१/३१.
पूर्वादिष्ववरस्योपसंख्यानम्, २/१/३१ वा०.

३. मध्यान्ताद्गुरो, ४/३/१३०.

मध्याद्गुरो, ६/३/११.
अन्ताच्चेति वक्तव्यम्, ६/३/११ वा०.

४. रुजार्थस्य भाववाचिनोऽज्वरिसन्ताप्योः, १/४/६१.

रुजार्यानां भाववचनानामज्वरे, २/३/५४.
अज्वरिसन्ताप्योरिति वक्तव्यम्, २/३/५४ वा०.

५. वा निष्कषोषमिश्रशब्दे ४/३/१६७.

वा षोषमिश्रशब्देषु, ६/३/५६.
निष्के चेति वक्तव्यम्, ६/३/५६ वा०.

५. अष्टाध्यायी में अनेक ऐसे शब्द हैं जिनकी सिद्धि के लिए पाणिनि ने नियमों का विधान किया है। पूज्यपाद देवन्दी ने उनमें से कुछ शब्दों को निपातन से सिद्ध माना है। जैसे—

जं० व्या०

अष्टा०

१. कर्मठः, ३/४/१५६

कर्मणि घटोऽठच्, ५/२/३५.

२. पत्नी, ३/१/३३.

पत्युर्नो यज्ञसंयोगे, ४/१/३३.

३. भूयहत्ये, २/१/६०.

भूवो भावे, ३/१/१०७.

४. सङ्गहाचारी, ४/३/१६३.

हनस्त च, ३/१/१०८.

५. स्थाण्डिलः, ३/२/१०.

चरणे ब्रह्माचारिणी, ६/३/८६.

स्थण्डिलाच्छयितरि व्रते, ४/२/१५.

६. पाणिनि ने जिन शब्दों को निपातन से सिद्ध माना है उनमें से कुछ शब्दों को पूज्यपाद देवन्दी ने नियमानुकूल माना है और उनके लिए विस्तृत सूत्रों का उल्लेख किया है। जैसे—

जं० व्या०

अष्टा०

१. दण्डिहस्तिनोः फे, ४/४/१६४.

वाशिजिह्वाशिनोः फे ढे, ४/४/१६५.

२. वस्सदिणो वसुलिणम्, २/२/८८.

३. सोः प्रातर्दिवाश्वसः, ४/२/१२०.

चतुश्शारेरस्त्रिकुक्षेः, ४/२/१२२.

दाण्डिनायनहास्तिनायनाथवंणिकजैह्वाशिनेयवासिनायनि-
भ्रौणहत्यघैवत्यसारवैश्वकर्मत्रेयहिरण्य मयानि, ६/४/१७४.

उपेयिवाननाश्वाननूचानश्च, ३/२/१०६.

सुप्रातसुश्वसुदिवशारिकुक्षचतुरश्रेणी-

पदाजपदप्रोष्ठपदाः, ५/४/१२०.

७. अष्टाध्यायी के अनेक सूत्रों को तो पूज्यपाद देवन्दी ने बिना किसी परिवर्तन के अपने व्याकरण-ग्रन्थ में समाविष्ट किया है और इस प्रकार अष्टाध्यायी के सूत्रों की अविकल रक्षा की है। जैसे—

ज० व्या०

१. ऋत्यकः, ४/३/१०५.
२. एङि पररूपम्, ४/३/८१.
३. एचोऽयवायावः, ४/३/६६.
४. झलां जश् झशि, ५/४/१२८.
५. समर्थः पदविधिः, १/३/१.

८. अष्टाध्यायी के अनेक सूत्रों का पूज्यपाद देवन्दी ने किचिद् परिवर्तन के साथ जैनेन्द्र-व्याकरण में समावेश किया है। जैसे—

ज० व्या०

१. अन्तेऽलः, १/१/४६.
२. इङ्विजः, १/१/७६.
३. परस्यादेः, १/१/५१.
४. प्रसहनेऽधेः, १/२/२८.
५. वसोऽनूपाध्याङः, १/२/११८.

६. पूज्यपाद देवन्दी ने जैनेन्द्र-व्याकरण में बीजाक्षरी संज्ञाओं का प्रयोग किया है। इन संज्ञाओं के प्रयोग का प्रभाव जैनेन्द्र-व्याकरण के अधिकांश सूत्रों पर पड़ा है। जिस प्रकार माहेश्वर सूत्रों के ज्ञान के बिना अष्टाध्यायी के सूत्रों को समझना दुरूह है उसी प्रकार जैनेन्द्र-व्याकरण की बीजाक्षरी संज्ञाओं के ज्ञान के बिना जैनेन्द्र-व्याकरण के सूत्रों को समझ पाना अत्यन्त कठिन है। निम्नलिखित उदाहरणों से यह सुस्पष्ट है—

ज० व्या०

१. कृद्धृत्साः, १/१/६.
२. खौ, ३/३/३८.
३. गोऽपित्, १/१/७८.
४. तः, १/३/१०२.
५. धेः, १/२/२१.
६. न धुखेऽगे, १/१/१८.
७. न बे, १/१/३७.
८. भार्यो, १/४/१४.
९. वागमिङ्, १/३/८२.
१०. वा गौ, १/४/६६.

१०. पूज्यपाद देवन्दी ने अष्टाध्यायी का अनुकरण करते हुए भी कुछ सूत्रों में मौलिकता लाने का प्रयत्न किया है। इसके लिए उन्होंने सूत्रों में कहीं पर सरल एवं कहीं पर संक्षिप्त पर्यायवाची शब्दों का प्रयोग किया है। ऐसा करने से सूत्र सहजगम्य एवं संक्षिप्त बन गए हैं। उदाहरणस्वरूप—

ज० व्या०

१. अद्री त्रिककुद्, ४/२/१४७.
२. अधीत्याऽदूराख्यानाम् १/४/८१.
३. काला मेयैः, १/३/६७.
४. क्षुद्रजीवाः, १/४/८४.

अष्टा०

- त्रिककुत्पर्वन्ते, ५/४/१४८७.
अध्ययनतोऽबिभ्र कृष्टाख्या-
नाम्, २/४/५.
कालाः परिमाणिना, २/२/५.
क्षुद्रजन्तवः, २/४/८.

चा० व्या०

- त्रिककुत्तनपर्वन्ते, ४/४/१३५.
सन्नि कृष्ट पाठानाम्,
२/२/५२,
—
क्षुद्रजन्तूनाम्, २/२/६०

जं० व्या०	अष्टा०	चा व्या०
५. तदस्मिन्पुद्गेयोद्धृ प्रयोजनात्, ३/२/४८.	संग्रामे प्रयोजन- योद्धृभ्यः ४/२/५६.	योद्धृप्रयोजनात् संग्राम, ३/१/३४.
६. दृश्यर्थेच्चिन्तायाम्, ५/३/२१.	पशयार्थेश्चानालोचने, ८/१/२५.	दृश्यर्थेऽनालोचने, ६/३/२३.
७. यथातथयथापुरयोः क्रमेण, ५/२/३५.	यथातथयथापुरयोः पर्यायेण, ७/३/३१	—
८. सस्थानक्रियं स्वम्, १/१/२.	तुल्यास्यप्रयत्नं सवर्णम्, १/१/६	—
२. सिद्धी भा. १/४/५.	अपवर्गं तृतीया,, २/३/६	—
१०. स्पद्धं परम्, १/२/६०.	विप्रतिषेधे परं कार्यम्, १/४/२	विप्रतिषेधे, १/१/१६.
११. संस्कृत वैयाकरणों ने अर्धमात्रा लाघव को अत्यन्त महत्त्व दिया है। ^१ इसी तथ्य को दृष्टि में रखते हुए पूज्यपाद देव- नन्दी ने जैनेन्द्र-व्याकरण में अनेक ऐसे सूत्रों को प्रस्तुत किया है जो कि अष्टाध्यायी एवं चान्द्र-व्याकरण के सूत्रों से भी अधिक संक्षिप्त प्रतीत होते हैं। संक्षेपण के इस प्रयास में अष्टाध्यायी एवं चान्द्र-व्याकरण के सूत्रों में विद्यमान बहुवचन के स्थान पर पूज्यपाद देवनन्दी ने जैनेन्द्र-व्याकरण के सूत्रों में एकवचन का प्रयोग किया है। संक्षिप्त-सूत्रों के कुछ उदाहरण निम्नलिखित हैं—		

जं० व्या०	अष्टा०	चा० व्या०
१. अर्श आदेरः, ४/१/५०.	अर्शादिभ्योऽच्, ५/२/१२७.	अर्श आदिभ्योऽच्, ४/२/४७.
२. इष्टादेः, ४/१/२२.	इष्टादिभ्यश्च, ५/२/८८.	इष्टादिभ्यः, ४/२/६४.
३. उगवादेर्यः, ३/४/२.	उगवादिभ्यो यत्, ५/१/२.	उगवादिभ्यो यत्, ४/१/२.
४. कण्डवादेर्यक्, २/१/२५.	कण्डवादिभ्यो यक्, ३/१/२७.	कण्डवादिभ्यो यक्, १/१/३६.
५. छेदादेर्नित्यम्, ३/४/६२.	छेदादिभ्यो नित्यम्, ५/१/६४.	छेदादिभ्यो नित्यम्, ४/१/७५.
६. प्रज्ञादेः, ४/१/४४.	प्रज्ञादिभ्यश्च, ५/४/३८.	प्रज्ञादिभ्यो वा, ४/४/२२.
७. शाखादेर्यः, ५/१/१५७.	शाखादिभ्यो यत्, ५/३/१०३.	शाखादिभ्यो यः ४/३/८१.
८. सिध्मादेः, ४/१/२५.	सिध्मादिभ्यश्च, ५/२/६७.	सिध्मादिभ्यः ४/२/१००.
९. सुखादेः, ४/१/५४.	सुखादिभ्यश्च, ५/२/१३१.	सुखादिभ्यः, ४/२/१२८.
१०. हविरपूपादेर्वी, ३/४/३.	विभाषा हविरपूपादिभ्यः ५/१/४	वा हविर्यूपदिभ्यः, ४/१/३.

जैनेन्द्र-व्याकरण की टीकाएँ—

पूज्यपाद देवनन्दी-कृत जैनेन्द्र-व्याकरण पर अनेक विद्वानों ने टीकाओं की रचना की है। श्रुतकीर्ति (१२वीं शताब्दी ई०) द्वारा रचित पंचवस्तु प्रक्रिया के अन्त में जैनेन्द्र-व्याकरण की एक विशाल राजमहल से उपमा दी गई है और उसी प्रासंग में १२वीं शताब्दी ई० तक जैनेन्द्र-व्याकरण पर लिखे गए न्यास, भाष्य, वृत्ति, टीका आदि की ओर भी निर्देश किया गया है।^१

जैनेन्द्र-व्याकरण के दोनों सूत्रपाठों (लघुपाठ एवं बृहत्-पाठ) पर टीकाओं की रचना की गई जिनमें से कुछ टीकाएँ सम्प्रति उपलब्ध हैं तथा कुछ अनुपलब्ध हैं। टीकाओं का विवरण इस प्रकार है—

उपलब्ध टीकाएँ— (लघुपाठ की टीकाएँ) —

१. अर्धमात्रालाघवेन पुत्रोत्सवं मन्यन्ते वैयाकरणाः ॥१२२॥ नागोजीभट्ट, परिभाषेन्दु शेखर, प्र० भा०, सम्पा०— के० वी० प्रभ्यकर, पूना, १९६२, पृ० १६८.
२. भूतस्तम्भसमुद्भूतं प्रबिलसन् न्यासोहरत्नकितिश्रीमद्बृत्तिकपाटसंपुटयुतं भाष्योऽथ शय्यातलम् ।
टीकामालमिहारक्षुरचितं जैनेन्द्रशब्दागम प्रासादं पृथुपंचवस्तुकमिदं सापानमारोहतात् ॥
प्रेमी, नाथूराम, जं० सा० इ०, पृ० ३३ पर उद्धृत

टीका का नाम	टीकाकार का नाम	टीका ग्रंथ सम्बन्धी विवरण
१. जैनेन्द्र-महावृत्ति	अभयनन्दी	९वीं शताब्दी ई० में रचित यह टीका जैनेन्द्र-व्याकरण पर लिखी गई टीकाओं में सबसे प्राचीन है। यह टीका भारतीय ज्ञानपीठ काशी से प्रकाशित हुई है। ^१
२. शब्दाम्भोजभास्करन्यास	प्रभाचन्द्र	प्रभाचन्द्र ने ११वीं शताब्दी ई० में जैनेन्द्र-व्याकरण पर इस न्यास की रचना की जो अभयनन्दी की महावृत्ति से भी अधिक विस्तृत है तथा अपूर्ण उपलब्ध है। बम्बई के सरस्वती भवन में इसकी दो अपूर्ण प्रतियां विद्यमान हैं। ^२
३. पञ्चवस्तु प्रक्रिया	श्रुतकीर्ति	श्रुतकीर्ति ने १२वीं शताब्दी ई० में इस प्रक्रिया-ग्रन्थ की रचना की। इसकी दो हस्तलिखित प्रतियां पूना के भंडारकर रिसर्च इन्स्टीट्यूट में है। ^३
४. अनिट्कारिकावचूरि	मुनि विजय विमल	जैनेन्द्र-व्याकरण की अनिट्कारिका पर श्वेतांबर जैन मुनि विजयविमल ने १७वीं शताब्दी में अनिट्कारिकावचूरि की रचना की है। इसकी हस्तलिखित प्रति छाणी के भंडार में (संख्या ५७८) है। ^४
५. जैनेन्द्र-व्याकरण-वृत्ति	मेघविजय	जैनेन्द्र-व्याकरण पर मेघविजय नामक किसी श्वेतांबर मुनि ने १८वीं शताब्दी ई० में वृत्ति की रचना की। ^५
६. लघु जैनेन्द्र	पं० महाचन्द्र	दिगम्बर जैन पं० महाचन्द्र ने अभय-नन्दी की महावृत्ति के आधार पर जैनेन्द्र-व्याकरण पर २०वीं शताब्दी ई० में लघुजैनेन्द्र नामक वृत्ति लिखी है जो महावृत्ति की अपेक्षा सरल है। इसकी एक प्रति अंकलेश्वर के दिगम्बर जैन मंदिर में और दूसरी अपूर्ण प्रति प्रतापगढ़ (मालवा) के पुराने जैन मंदिर में है। ^६

१. जैनेन्द्रमहावृत्ति, सम्पा० शम्भुनाथ त्रिपाठी, भारतीय ज्ञानपीठ, काशी, १९५६.
२. शाह, अम्बालाल प्रे०, जैन साहित्य का बृहद् इतिहास, पंचम भाग, वाराणसी, १९६६, पृ० ११.
३. वही, पृ० १२.
४. वही, पृ० १५.
५. वही, पृ० १५.
६. शाह, अम्बालाल, प्रे० जे० सा० बृ० इ०, पं० भा०, पृ० १३.

टीका का नाम	टीकाकार का नाम	टीका-ग्रन्थ सम्बन्धी विवरण
७. जैनेन्द्र प्रक्रिया	पं० वंशीधर	पं० वंशीधर ने २०वीं शताब्दी ई० में इस प्रक्रिया ग्रंथ की रचना की है। इसका केवल पूर्वाध्वं ही प्रकाशित हुआ है। ^१
८. प्रक्रियावतार	नेमिचन्द्र	डॉ० हीरालाल जैन के अनुसार।
९. जैनेन्द्र-लघुवृत्ति	पं० राजकुमार	नेमिचन्द्र ने प्रक्रियावतार तथा पं० राजकुमार ने जैनेन्द्र-लघु वृत्ति की रचना की। ^२

शब्दार्णव-संस्करण (बृहत्-पाठ) की टीकाएँ—

शब्दार्णव संस्करण के रचयिता गुणनन्दी हैं। इस संस्करण की दो टीकाएँ उपलब्ध हैं जो सनातन-जैन ग्रन्थमाला में छप चुकी हैं—

टीका का नाम	टीकाकार का नाम	टीका ग्रंथ सम्बन्धी विवरण
१०. शब्दार्णव-चन्द्रिका	सोमदेवसूरि	सोमदेवसूरि ने १३वीं शताब्दी ई० के पूर्वाध्वं में इस टीका की रचना की। इसकी एक बहुत ही प्राचीन तथा अतिशय जीर्ण प्रति भण्डारकर रिसर्च इन्स्टीट्यूट में है। ^३
११. शब्दार्णव-प्रक्रिया	—	पं० युधिष्ठिर मीमांसक के अनुसार “किसी अज्ञातनामा पंडित ने शब्दार्णव-चन्द्रिका के आधार पर शब्दार्णव प्रक्रिया ग्रंथ लिखा है। इस प्रक्रिया के प्रकाशक महोदय ने ग्रंथ का नाम जैनेन्द्र-प्रक्रिया और ग्रन्थकार का नाम गुणनन्दी लिखा है, ये दोनों अशुद्ध हैं।” ^४

अनुपलब्ध टीका-ग्रंथ —

टीका का नाम	टीकाकार का नाम	टीका-ग्रंथ सम्बन्धी विवरण
१२. जैनेन्द्र-न्यास	पूज्यपाद देवनन्दी	दक्षिण प्रान्त के जैन तीर्थ हुम्मच में स्थित पद्मावती मन्दिर के १५३० ई० के शिलालेख (संख्या ६६७) के अनुसार पूज्यपाद देवनन्दी (५ वीं शताब्दी ई०) ने जैनेन्द्रन्यास की रचना की थी। ^५ यह न्यास ग्रंथ सम्प्रति अनुपलब्ध है।

- मीमांसक युधिष्ठिर, सं० व्या० शा० ३०, प्र० भा०, पृ० ५८८.
- जैन, हीरालाल, भारतीय संस्कृति में जैन धर्म का योगदान, भोपाल, १९६२, पृ० १८५.
- प्रेमी, नाथूराम, जैन सा० ३०, पृ० ३८.
- वही.
- मीमांसक, युधिष्ठिर, सं० व्या० शा० ३०, प्र० भा०, पृ० ५९१.
- न्यासं जैनेन्द्र-संज्ञं सकल-बुध-मुत्तं पाणिनीयस्य भूयो-न्यासं शब्दावतारं मनुजततिहितं वैद्यशास्त्रं च कृत्वा। यस्तत्त्वार्थस्य टीका व्यरचयदिह तां भास्यसो पूज्यपाद-स्वामी भूपाल-वन्द्यः स्वपरहितवचः पूर्ण-द्गबोध-वृत्तः।

—जैन शिलालेखसंग्रह, तृतीय भाग, संग्रहकर्ता-विजयमूर्ति, बम्बई, १९५७, पृ० ५९६.

श्रुतकीर्ति ने “भाष्योऽथ शय्यातलम्” शब्दों के द्वारा जैनेन्द्र-व्याकरण पर लिखे गए भाष्य की ओर संकेत किया है।^१ पञ्चवस्तु प्रक्रिया (१२वीं शताब्दी ई०) में भाष्य का उल्लेख होने से इतना स्पष्ट है कि इस भाष्य की रचना १२वीं शताब्दी ई० से पूर्व ही हो चुकी थी।

जैनेन्द्र-व्याकरण के खिलपाठ तथा तत्सम्बद्ध टीकाएँ—

प्रत्येक व्याकरण के चार खिलपाठ होते हैं—धातुपाठ, उणादिपाठ, लिङ्गानुशासनपाठ एवं गणपाठ। उपर्युक्त चारों पाठों से युक्त व्याकरण-ग्रन्थ पञ्चाङ्गपूर्ण कहलाता है। पाणिनि के पश्चात् लिखे गए जैनेन्द्र-व्याकरण के पाँचों अंगों की रचना की गई थी उनमें से कुछ तो उपलब्ध हैं एवं कुछ अनुपलब्ध हैं।

धातुपाठ—

जैनेन्द्र-व्याकरण के औदीच्य एवं दाक्षिणात्य ये दो संस्करण हैं। औदीच्य-संस्करण पूज्यपाद देवनन्दी की कृति है। दाक्षिणात्य संस्करण जो कि शब्दार्णव नाम से भी प्रसिद्ध है गुणनन्दी की कृति है। पं० युधिष्ठिर मीमांसक के अनुसार काशी से प्रकाशित शब्दार्णव-व्याकरण के अन्त में छपा हुआ धातुपाठ गुणनन्दी द्वारा संस्कृत है। उन्होंने अपने मत की पुष्टि के लिए निम्न प्रमाण प्रस्तुत किए हैं—^२

जैनेन्द्र-महावृत्ति (१/२/७३) में मित्संज्ञाप्रतिषेधक “यमोऽपरिवेषणे” धातुसूत्र उद्धृत किया गया है। पूज्यपाद देवनन्दी द्वारा दिए गए धातुपाठ में न तो किसी मित्संज्ञाविधायक सूत्र का निर्देश किया गया है और न ही प्रतिषेधक सूत्र का। प्राचीन धातु-ग्रन्थों में “नन्दी” के नाम से प्राप्त धातु-निर्देशों का धातुपाठ में उर्सा रूप में उल्लेख नहीं मिलता। इससे यही सिद्ध होता है कि वर्तमान जैनेन्द्र-धातुपाठ आचार्य गुणनन्दी द्वारा परिष्कृत है।

पं० युधिष्ठिर मीमांसक के निर्देशानुसार भारतीय ज्ञानपीठ काशी से प्रकाशित जैनेन्द्र-महावृत्ति के अन्त में गुणनन्दी द्वारा संशोधित पाठ ही छपा है।^३ इस धातुपाठ के अन्त में निर्दिष्ट श्लोक से भी गुणनन्दी जैनेन्द्र धातुपाठ के परिष्कर्ता सिद्ध होते हैं।^४ जैनेन्द्र-धातुपाठ में वैदिक प्रयोगों से सम्बद्ध धातुओं का अभाव है। आत्मनेपदी धातुओं से ‘ङ’ एवं ‘ऐ’ अनुबन्धों का निर्देश किया गया है। ‘ञ्’ अनुबन्ध उभयपदी धातुओं का द्योतक है तथा अनुबन्धरहित धातुएँ परस्मैपदी हैं। धातुपाठ में परस्मैपदी धातुओं को “मवतः” कहा गया है। जैनेन्द्र-धातुपाठ में भ्वादिगण के आरम्भ में आत्मनेपदी (ङैदित्) धातुओं का पाठ है तथा तत्पश्चात् परस्मैपदी (मवन्त) एवं उभयपदी (ञित्) धातुएँ पढ़ी गई हैं। ऐसा होते हुए भी परम्परा का अनुसरण करते हुए √भू धातु को धातुपाठ के आरम्भ में ही स्थान दिया गया है। धातुपाठ में ह्लादिगण की धातुओं का अदादिगण की धातुओं से पहले निर्देश किया गया है। अन्य गणों का क्रम पारम्परिक ही है। यहाँ “औ” अनुबन्ध अनिट् धातुओं का सूचक है। जैनेन्द्र-धातुपाठ में सभी षित् एवं ओदित् धातुओं को क्रमशः ‘ष्’ एवं ‘ओ’ अनुबन्धों सहित पढ़ा गया है। जबकि अष्टाध्यायी के धातुपाठ में धातुओं को कहीं तो उपर्युक्त अनुबन्धों सहित पढ़ा है तथा कहीं उन धातुओं से उपर्युक्त अनुबन्धों का निर्देश न करते हुए उनको उन अनुबन्धों से युक्त घोषित किया है। उदाहरण के लिए पाणिनि ने घटादि धातुओं को षित् तथा स्वादि धातुओं को ओदित् घोषित किया है। जैनेन्द्र धातुपाठ में चुरादिगण की धातुएँ दो वर्गों में विभक्त की गई हैं। प्रथम वर्ग के

१. भाष्योऽथ शय्यातलम्, प्र० मी, नाथूराम, जैन० सा० इ०, पृ० ३२ पर उद्धृत।

२. मीमांसक, युधिष्ठिर, सं० व्या० शा० इ०, द्वितीय भाग, हरयाणा, वि० सं० २०३०, पृ० ११८.

३. वही.

४. पादाम्भोजानमनानवपतिमकुटानर्घ्यमाणिक्यतारानीकाससेविताद्युतिललितनखानीकशीतांशु बिम्बः।

दुर्वारानङ्गना। नाम्बुहृहिमकरोदध्वस्तमिथ्यान्धकारः शब्दब्रह्मा स ज्ञोयाद्गुणनिधिगुणनन्दित्रतीशस्सुसौख्यः ॥

—(जैनेन्द्र-धातुपाठ के अंत में दी गई पुष्पिका), जै० म० वृ०, पृ० ५०५.

५. वही, पृ० ४६२.

६. वही, पृ० ४६६.

७. घटादयः षितः, क्षीरस्वामी, क्षीरतरङ्गिणी, सम्पा० युधिष्ठिर मीमांसक, रामलाल कपूर, ट्रस्ट, वि० सं० २०१४, पाणिनीय धातुपाठ १/५२२.

८. स्वादय ओदितः, पा० घा०, ४/३१.

९. जै० म० वृ०, पृ० ५०२-५०५, (१—३१२ तक की धातुएँ)

अन्तर्गत उन धातुओं का निर्देश है जो कि केवल चुरादिगण की ही धातुएँ हैं। इस वर्ग की धातुओं का परस्मैपदी^१ आत्मनेपदी^२ एवं उभयपदी^३ में विभाजन किया गया है। द्वितीय वर्ग^४ में वे धातुएँ निर्दिष्ट हैं जो विकल्प से चुरादिगण की धातुएँ हैं। इन धातुओं का भी परस्मैपदी,^५ आत्मनेपदी^६ तथा उभयपदी^७ की दृष्टि से विभाजन किया गया है। संक्षिप्तता, स्पष्टता तथा मौलिकता की दृष्टि से जैनेन्द्र धातुपाठ में कुछ धातुओं के अर्थों को अष्टाध्यायी के धातुपाठ में निर्दिष्ट धात्वर्थों से किञ्चिद् भिन्न रूप में प्रस्तुत किया गया है। संक्षिप्तता के उद्देश्य से अष्टाध्यायी के धातुपाठ में विद्यमान धात्वर्थों के स्थान पर जैनेन्द्र धातुपाठ में संक्षिप्त पर्यायवाची शब्दों को रखा गया है। उदाहरणतः—अष्टाध्यायी के धातुपाठ में निर्दिष्ट वदनैकदेश^८, अवगमने^९ रक्षणे^{१०} तथा संशब्दने^{११} शब्दों के लिए जैनेन्द्र-धातुपाठ में क्रमशः मुखैकदेशे^{१२}, बोधने^{१३}, गुप्ति^{१४} तथा आख्याने^{१५} शब्दों का प्रयोग किया गया है।

अष्टाध्यायी के धातुपाठ में स्त्रीलिंग में निर्दिष्ट धात्वर्थों का जैनेन्द्र-व्याकरण के धातुपाठ में कहीं-कहीं पर पुल्लिंग में निर्देश किया गया है। उदाहरण के लिए अष्टाध्यायी के धातुपाठ में उल्लिखित ज्ञीप्सायाम्^{१६}, हिंसायाम्^{१७} तथा कुत्सायाम्^{१८} शब्दों के स्थान पर जैनेन्द्र-धातुपाठ में क्रमशः ज्ञीप्सने^{१९}, हिंसने^{२०} एवं कुत्सने^{२१} शब्दों का प्रयोग किया गया है। ऐसा प्रतीत होता है कि जैनेन्द्र-धातुपाठ में उपर्युक्त धात्वर्थों का निर्देश संक्षिप्तता को दृष्टि में रखते हुए ही किया गया है। कहीं-कहीं पर जैनेन्द्र-धातुपाठ में अष्टाध्यायी के धात्वर्थों को अपेक्षाकृत अधिक स्पष्ट किया गया है। उदाहरण के लिए अष्टाध्यायी के धातुपाठ में दिए गए “शब्दे तारे”^{२२} धात्वर्थ के स्थान पर जैनेन्द्र-धातुपाठ में “उच्चैः शब्दे”^{२३} धात्वर्थ का निर्देश स्पष्टता की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है।

जैनेन्द्र-धातुपाठ में धात्वर्थों को प्रस्तुत करने में “ति” से अन्त होने वाले शब्दों का अनेक स्थानों पर प्रयोग किया गया है। उदाहरणस्वरूप अष्टाध्यायी के धातुपाठ में निर्दिष्ट दर्शने^{२४}, आदाने^{२५} तथा विलेखने^{२६} धात्वर्थों के स्थान पर जैनेन्द्र-धातुपाठ में क्रमशः दृष्टौ^{२७}, गृहीतौ^{२८} एवं विलिखितौ^{२९} धात्वर्थों का निर्देश किया गया है।

१. वही, पृ० ५०२-५०४ (१—२६३ तक की धातुएँ)
२. वही, पृ० ५०५, (२६४—३११ तक की धातुएँ).
३. वही, पृ० ५०५, (३१२ वीं धातु).
४. वही, पृ० ५०५, (३१३—३५१ तक की धातुएँ)
५. वही, पृ० ५०५, (३५३—३४२ तक की धातुएँ).
६. वही, पृ० ५०५, (३४३—३४८ तक की धातुएँ)
७. वही, पृ० ५०५, (३४९—३५१ तक की धातुएँ)
८. गडि वदनैकदेशे, पा० धा०, १/२५३.
९. बुध अवगमने, वही, १/५६७.
१०. गुपू रक्षणे, वही, १/२८०.
११. कृत संशब्दने, वही, १०/१०१
१२. गडि मुखैकदेशे, जै० म० वृ०, पृ० ४६४.
१३. बुधञ् बोधने, वही, पृ० ४६२.
१४. गुपोङ् गुप्ती, वही, पृ० ४६०.
१५. कृत आख्याने, वही, पृ० ५०३.
१६. प्रष्ठ ज्ञीप्सायाम्, पा० धा० ६/११७.
१७. रुषा रिषा हिंसायाम्, वही, ६/१२४.
१८. णिदि कुत्सायाम्, वही, १/५४.
१९. प्रच्छो ज्ञीप्सने, जै० म० वृ०, पृ० ५००.
२०. रशी, रिशी हिंसने, वही.
२१. णिदि कुत्सने, वही, पृ० ४६३.
२२. कुच शब्दे तारे, पा० धा०, १/११५.
२३. कुच उच्चैः शब्दे, जै० म० वृ० ४६३.
२४. ईक्ष दर्शने, पा० धा०, १/४०३.
२५. कृक वृक आदाने, वही, १/७३.
२६. कृष विलेखने, वही, १/७१७.
२७. ईक्षै दृष्टौ, जै० म० वृ०, पृ० ४६१.
२८. कृकै, वृकै गृहीतौ, वही. पृ० ४८६.
२९. कृषो विलिखितौ, वही, पृ० ४६६.

जैनेन्द्र-व्याकरण में कुछ सूत्रों में “स्वार्थ” शब्द निर्दिष्ट है।^१ इस शब्द के प्रयोग का विशेष प्रयोजन है। जैनेन्द्र-धातुपाठ में कुछ धातु अनेकार्थक हैं तथा जहाँ धातु के अर्थ-विशेष का निर्देश आवश्यक होता है वहाँ पूज्यपाद देवनन्दी ने “स्वार्थ” शब्द का प्रयोग किया है। अभयनन्दी ने स्वार्थ शब्द से अभिप्रेत अर्थ को तत्तत्-सूत्र की वृत्ति में स्पष्ट कर दिया है।

जैनेन्द्र-धातुपाठ की टीकाएँ—

१. हैमलिङ्गानुशासन-विवरण में प्रयुक्त “नन्दि धातुपारायण”^२ तथा “नन्दिपारायण”^३ शब्दों के आधार पर पं० युधिष्ठिर मीमांसक का कथन है कि पूज्यपाद देवनन्दी ने धातुपाठ पर कोई वृत्तिग्रन्थ लिखा था जिसका नाम धातुपारायण था। धातुपारायण नाम का धातुव्याख्यान ग्रन्थ पाणिनीय धातुपाठ पर भी था। अन्त में उनका कथन है कि “ऐसी अवस्था में हम निश्चयपूर्वक नहीं कह सकते कि आचार्य देवनन्दी का धातुपारायण पाणिनीय धातुपाठ पर था, अथवा जैनेन्द्र-धातुपाठ पर।”^४

२. श्रुतपाल (वि० की ६वीं शताब्दी) ने जैनेन्द्र-धातुपाठ पर किसी व्याख्यान ग्रन्थ की रचना की थी।^५

३. आचार्य श्रुतकीर्ति (वि० की १२वीं शताब्दी) ने जैनेन्द्र-व्याकरण पर पंचवस्तु नामक प्रक्रिया-ग्रन्थ की रचना की जिसमें जैनेन्द्र-धातुपाठ का भी व्याख्यान किया गया है।^६

४. शब्दार्णव पर किसी अज्ञातनामा विद्वान् ने एक प्रक्रिया-ग्रन्थ की रचना की जिसमें जैनेन्द्र-धातुपाठ की व्याख्या की गई है।^७

गणपाठ—

पूज्यपाद देवनन्दी ने जैनेन्द्र-व्याकरण से सम्बद्ध गणपाठ की भी रचना की थी यह निश्चित है। उनके द्वारा रचित गणपाठ पृथक् रूप से उपलब्ध न होकर अभयनन्दी-विरचित महावृत्ति में उपलब्ध होता है। जैनेन्द्र-व्याकरण के गणपाठ में निम्न तथ्य उल्लेखनीय हैं—

१. स्वर एवं वैदिक प्रकरणों के सूत्रों के अभाव के कारण तत्सम्बद्ध गणों का इस गणपाठ में सर्वथा अभाव है।

२. इस गणपाठ में प्रायः तालव्य “श” के स्थान पर दन्त्य “स” का प्रयोग किया गया है। उदाहरण के लिए अष्टाध्यायी के “किशर”^८ पाठ के स्थान पर जैनेन्द्र-व्याकरण के गणपाठ में चान्द्र-व्याकरण के अनुकरण पर^९ “किसर” शब्द का पाठ मिलता है।^{१०} अष्टाध्यायी^{११} तथा चान्द्र-व्याकरण^{१२} के “शकुलाद” पाठ के स्थान पर जैनेन्द्र-व्याकरण में संकुलाद पाठ मिलता है।^{१३}

३. कहीं-कहीं पर दन्त्य “स” के स्थान पर तालव्य “श” का भी प्रयोग मिलता है। उदाहरण के लिए अष्टाध्यायी के “कौसल्य”^{१४} शब्द के स्थान पर जैनेन्द्र-व्याकरण में चान्द्र-व्याकरण (कौशल) के समान^{१५} “कौशल्य” शब्द का पाठ है।^{१६}

१. द्र०-जै० व्या० १/१/६३, १/२/३७, १/२/१५३, २/१/४२, २/१/७२, ४/३/७१, ५/१/१०२ इत्यादि।
२. तक्रः तक्रम्-उदशिवत् । नन्दिधातुपारायणे । हेमचन्द्र, श्री हैमलिङ्गानुशासन-विवरण, सम्पा०—विजयसमाभद्रसूरि, बम्बई, १९४०, पृ० १३२.
३. रणजिरं च नन्दिपारायणे । वही, पृ० १३३.
४. मीमांसक, युधिष्ठिर, सं० व्या० शा० इ०, द्वि० भा०. पृ० ११८-११९.
५. वही, प्र० भा०. पृ० ५६५.
६. वही, द्वि० भा० पृ० १२०.
७. वही।
८. किशर । नरद ।हरिद्रायणी । किशरादिः । काशिका (प्र० भा०) ४/४/५३, सम्पा०—नारायण मिश्र, चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, १९६६.
९. किसर । नरद ।पर्णी । चन्द्रगोमी, चान्द्र-व्याकरण, प्र० भा० ३/४/५५ वृ० सम्पा० क्षितीशचन्द्र चटर्जी, पूना, १९५३.
१०. किसर । नरद ।हरिद्रायणी । जै० व्या० ३/३/१७२ वृ०.
११. काशि । चेदि ।शकुलाद ।देवराज । का० ४/२/११६.
१२. काशि । काचि ।शकुलाद ।देवराज । चा० व्या० ३/२/३३ वृ०.
१३. काणि । वेदि ।संकुलाद ।देवराज । जै० व्या० ३/२/६२ वृ०.
१४. कौसल्यकर्मार्थिभ्यां च, अष्टा० ४/१/१५५.
१५. दगु कौशल कर्मरच्छागवृषाद् युट् च, चा० व्या० २/४/८७.
१६. कौशल्येभ्यः ; जै० व्या० ३/१/१४२.

४. पूज्यपाद देवनन्दी ने कतिपय विभिन्न गणों का एकीकरण भी किया है। उदाहरण के लिए अष्टाध्यायी^१ एवं चान्द्र-व्याकरण^२ के 'पिच्छादि' एवं तुन्दादिगणों को उन्होंने तुन्दादिगण का रूप दिया है।^३

५. पूज्यपाद देवनन्दी ने गणपाठ में उपलब्ध शब्दों में कहीं-कहीं किञ्चिद् भिन्नता की है। उदाहरणस्वरूप अष्टाध्यायी^४ एवं चान्द्र-व्याकरण^५ के गणपाठों में विद्यमान छात्रव्यंसक तथा भिन्धिलवणा पाठों के स्थान पर उन्होंने क्रमशः छत्रव्यंसक तथा भिन्धिप्रलवणा पाठों का निर्देश किया है।^६

६. अष्टाध्यायी के गणपाठ में उपलब्ध अनेक गणसूत्र जैनेन्द्र-व्याकरण में वार्तिकों के रूप में दिए गए हैं। उदाहरण के लिए—

जै० व्या०	अष्टा०
१. संभूयोऽम्भसोः सखं च, ३/१/८५ वा०	संभूयोऽम्भसोः सलोपश्च, का० ४/१/६६ (ग० सू०)
२. अर्हतो नुम्च, ३/४/११४ वा०	अर्हतो नुम् च, का० ५/१/१२४ (ग० सू०)
३. ईरिकादीनि च वनोत्तरपदानि संज्ञायाम्, ५/४/११७ वा०	ईरिकादिभ्यो वनोत्तरपदेभ्यः संज्ञायाम्, का० ८/४/३६ (ग० सू०) इत्यादि।

उणादि पाठ

पूज्यपाद देवनन्दी द्वारा रचित उणादिपाठ स्वतन्त्र रूप से इस समय उपलब्ध नहीं है। किन्तु अभयनन्दी की महावृत्ति में निम्ननिर्दिष्ट कुछ 'उणादिसूत्र' उद्धृत हैं—

१. 'तनेडँउः सन्वच्च', जै० म० वृ०, पृ० ३
२. 'अस् सर्वधुभ्यः' वही, पृ० १७
३. 'कृ वा पा जिमि स्वदि साध्यशूभ्य उण्', वही, पृ० ११८
४. 'वृत्तु वदिहनि कमि काषिभ्यः सः', वही, पृ० ११८
५. 'अण्डः । जू कृसृवृडः'^७, वही, पृ० ११६
६. 'गमेरिन्', वही, पृ० ११६
७. 'आडि णित्' वही, पृ० ११६
८. 'भुवश्च', वही, पृ० ११६

ये उणादि सूत्र पूज्यपाद देवनन्दी की ही रचना है। इसका मुख्य प्रमाण यह है कि अनेक उणादिसूत्रों में जैनेन्द्र-व्याकरण की ही संज्ञाओं का प्रयोग किया गया है। उदाहरण के लिए—'अस् सर्वधुभ्यः'^८ उणादिसूत्र में धातुसंज्ञा के लिए जैनेन्द्र-व्याकरण की धुसंज्ञा^९ का प्रयोग किया गया है।

१. नोमादिपाभादिपिच्छादिभ्यः शनेल चः, तुन्दादिभ्यः इलच्चः,—अष्टा० ५/२/१००, ५/२/११७.
२. पिच्छादिभ्यश्चेलच्, चा० व्या० ४/२/१०३ तथा द्रष्टव्य—४/२/११६ वृ०.
३. तुन्दादेरिलः जै० व्या० ४/१/४३.
४. मयूरव्यंसकः । छात्रव्यंसकः । काम्बोजमण्डः । भिन्धिप्रलवणा । पञ्चप्रकृटा । का० २/१/७२.
५. द्र०—चा० व्या० २/२/१८ वृ०.
६. मयूर व्यंसकः । छात्रव्यंसकः । भिन्धिप्रलवणा । श्रोदनपाणिनीया । जै० व्या० १/३/६६ वृ०.
७. पं० युधिष्ठिर मीमांसक के मतानुसार जैनेन्द्र-महावृत्ति का उपयुक्त मुद्रित पाठ (अण्डः । जू कृ सृवृडः ।) अशुद्ध है तथा शुद्ध पाठ अण्डो जू कृ सु वृडः है ।
—द्र०—जै० म० वृ०, भूमिका, पृ० ४८.
८. जै० म० वृ०, पृ० १७.
९. जै० व्या०, १/२/१.

पं० युधिष्ठिर मीमांसक के अनुसार जैनेन्द्र-व्याकरण से पूर्व पंचपादी एवं दशपादी उणादिपाठ विद्यमान थे। पंचपादी के प्राच्य, औदीच्य एवं दाक्षिणात्य, तीनों पाठ जैनेन्द्र-व्याकरण से पूर्व रचे जा चुके थे। पं० युधिष्ठिर मीमांसक ने जैनेन्द्र-महावृत्ति में उपलब्ध 'अस् सर्वधुभ्यः' उणादिसूत्र की पंचपादी के प्राच्य, औदीच्य, दाक्षिणात्य पाठ तथा दशपादी उणादिपाठ के सूत्रों से तुलना की है—^१

जै० म० वृ०	—	अस् सर्वधुभ्यः, जै० म० वृ० १/१/७५
पंचपादी प्राच्यपाठ	—	सर्व धातुभ्योऽसुन् । ४/१८८
पंचपादी औदीच्यपाठ	—	असुन्/क्षीरतरङ्गिणी, पृ० ६३
पंचपादी दाक्षिणात्यपाठ	—	असुन्/श्वेत० ४/१६४
दशपादी पाठ	—	असुन्/६/४६

उपर्युक्त सूची से स्पष्ट है कि 'सर्वधातुभ्यः' अंश केवल पंचपादी के प्राच्यपाठ में ही है तथा जैनेन्द्र-महावृत्ति में विद्यमान 'सर्वधुभ्यः' अंश पर इसका पूर्ण प्रभाव है। उपर्युक्त आधार पर पं० युधिष्ठिर मीमांसक का कथन है कि "जैनेन्द्र उणादिपाठ पंचपादी के प्राच्यपाठ पर आश्रित है।"^२

लिङ्गानुशासन पाठ—

जैनेन्द्र-व्याकरण का लिङ्गानुशासन-पाठ सम्प्रति अनुपलब्ध है। पूज्यपाद देवनन्दी ने जैनेन्द्र-व्याकरण पर लिङ्गानुशासन की रचना की थी। इस विषय में पं० युधिष्ठिर मीमांसक ने निम्नलिखित प्रमाण प्रस्तुत किए हैं—^३

(क) प्राचीन आचार्यों के लिङ्गानुशासनों की ओर संकेत करते हुए वामन ने अपने लिङ्गानुशासन का भी उल्लेख किया है (व्याडिप्रणीतमथ वाररुचं सचान्द्रं जैनेन्द्र लक्षणगतं विविधं तथाऽन्यत् लिङ्गस्य लक्ष्मं.....इहार्थाः ॥३१॥)।

(ख) अभयनन्दी की महावृत्ति में कहा गया है कि गोमय आदि शब्दों में दोनों लिङ्ग मिलते हैं, तथा उनका ज्ञान पाठ से करना चाहिए (गोमयकषायकार्षापण कुतपकवाटशंखादिपाठादवगमः कर्तव्यः—जै० म० वृ० १/४/१०८)।

पं० युधिष्ठिर मीमांसक के मतानुसार उपर्युक्त उद्धरण में पाठ शब्द लिङ्गानुशासन पाठ का ही द्योतक है क्योंकि 'पुंसि चार्धर्चाः' (जै० व्या० १/४/१०८) सूत्र पर अष्टाध्यायी के समान जैनेन्द्र-व्याकरण में कोई गण न होने के कारण इसका पाठ लिङ्गानुशासन से ही संभव हो सकता है।

(ग) हेमचन्द्र ने स्वीय लिङ्गानुशासन के स्वोपज्ञ-विवरण में नन्दी के नाम से एक उद्धरण दिया है "भ्रामरं तु भवेच्छुक्लं क्षौद्रं तु कपिलं भवेत्" इति नन्दी। (श्रीहैमलिङ्गानुशासनविवरण, पृ० ८५)

पं० युधिष्ठिर मीमांसक के मतानुसार उपर्युक्त पाठ पूज्यपाद देवनन्दी के लिङ्गानुशासन का ही है। उपर्युक्त उद्धरण से यह सुस्पष्ट है कि पूज्यपाद-देवनन्दी-कृत लिङ्गानुशासन छन्दोबद्ध था।

हेमचन्द्र के लिङ्गानुशासन-विवरण में उपलब्ध—“नदिनः गुणवृत्तोस्त्वाश्रयलिङ्गता स्वादुरोदनः, स्वाद्वी पेया, स्वादु पयः ॥”^४ उद्धरण के आधार पर पं० युधिष्ठिर मीमांसक का कथन है कि पूज्यपाद देवनन्दी ने अपने लिङ्गानुशासन पर कोई व्याख्या भी लिखी थी तथा हेमचन्द्र ने उपर्युक्त पंक्तियों में जैनेन्द्रलिङ्गानुशासन की व्याख्या की ओर ही संकेत किया है।^५

पूज्यपाद देवनन्दी ने इष्टदेवता स्वयम्भू को नमस्कार करते हुए जैनेन्द्र-व्याकरण का आरम्भ किया है।^६ प्रथम सूत्र में जैन धर्म के प्रसिद्ध सिद्धान्त 'अनेकान्तवाद' का उल्लेख पूज्यपाद देवनन्दी के जैन-मतावलम्बी होने का प्रत्यक्ष

१. मीमांसक, युधिष्ठिर, सं० व्या० शा० इ०, द्वि० भा, पृ० २४४.
२. वही।
३. मीमांसक, युधिष्ठिर, जै० म० वृ०, भूमिका, पृ० ४६.
४. हेमचन्द्र, श्रीहैमलिङ्गानुशासन विवरण, पृ० १०२.
५. मीमांसक, युधिष्ठिर, जै० म० वृ०, भूमिका, पृ० ४६.
६. लक्ष्मीरात्यन्तिकी यस्य निरवद्याऽवशासते।

प्रमाण है।^१ उक्त व्याकरण-ग्रन्थ में अनेक ऐसी विशेषताएँ हैं जो कि व्याकरण के क्षेत्र में इसको महत्त्वपूर्ण सिद्ध करती हैं।

प्रत्याहार-सूत्र—

पूज्यपाद देवनंदी द्वारा रचित जैनेन्द्र-व्याकरण के आरम्भ में प्रत्याहार-सूत्र उपलब्ध नहीं होते किन्तु निम्न प्रमाणों के आधार पर यह अनुमान किया जाता है कि प्रारम्भ में जैनेन्द्र-व्याकरण के आरम्भ में प्रत्याहार-सूत्र रहे होंगे—

- (क) अष्टाध्यायी की भाँति जैनेन्द्र-व्याकरण में भी संक्षेप के लिए प्रत्याहारों का प्रयोग उपलब्ध होता है। उदाहरण के लिए अच्^३, इक्^३, एङ्^३, ऐच्^३, झल्^३, यण्^३ तथा हल्^३ आदि प्रत्याहार यहाँ प्रयुक्त हुए हैं।
- (ख) जैनेन्द्र-व्याकरण में प्रत्याहार बनाने की विधि का निर्देशक सूत्र “अन्त्येनेतादिः” (जै० व्या० १/१/७३) उपलब्ध है।
- (ग) जिस प्रकार अष्टाध्यायी में “हयवरट्” प्रत्याहार सूत्र का “र्” लेकर तथा “लण्” प्रत्याहार सूत्र का “अ” लेकर ‘र’ प्रत्याहार बनाया गया है उसी प्रकार यहाँ पर ‘र’ प्रत्याहार का निर्माण किया गया है। इस तथ्य की पुष्टि जैनेन्द्र-व्याकरण के ‘रन्तोऽणुः’ (जै० व्या० १-१-४८) सूत्रपर अभयनन्दी के निम्न कथन से होती है—
“रन्त इति लणो लकाराकारेणप्रश्लेषनिर्देशात् प्रत्याहारग्रहणम् ।”
- (घ) जैनेन्द्र-व्याकरण के ‘कार्यार्थोऽप्रयोगीत्, (जै० व्या० १/२/३) सूत्र की वृत्ति में अभयनन्दी ने ‘अइ उण् णकारः कहकर ‘ण्’ को इत् संज्ञक कहा है।
- (ङ) जैनेन्द्र-व्याकरण के ‘अणुदित् स्वस्यात्मनाऽभाव्योऽत्परः’ (जै० व्या० १/१/७२) सूत्र में प्रयुक्त ‘अण्’ प्रत्याहार का स्पष्टीकरण अभयनन्दी ने उसी सूत्र की वृत्ति में इस प्रकार किया है—“इदमण्ग्रहणं परेण णकारेण।”

जैनेन्द्र-महावृत्ति के आरम्भ में दी गई भूमिका में पं० महादेव चतुर्वेदी ने जैनेन्द्र-व्याकरण के दोनों सूत्रपाठों से सम्बद्ध प्रत्याहार-सूत्रों का उल्लेख किया है।^१ पंचाध्यायी के सूत्रपाठ तथा अष्टाध्यायी के सूत्रपाठ में पर्याप्त साम्य है। इसी तथ्य को दृष्टि में रखते हुए पं० महादेव चतुर्वेदी ने जैनेन्द्र-व्याकरण के प्रत्याहार-सूत्रों को भी अष्टाध्यायी के प्रत्याहार-सूत्रों के समान माना है। उनके अनुसार जैनेन्द्र-महावृत्ति के आधार से उपलब्ध पंचाध्यायी के सूत्रपाठ से सम्बद्ध प्रत्याहार सूत्र ये हैं—

“अ इ उण् १। ऋ लृ क् २। एओङ् ३। ऐ औच् ४। हय वर ट् ५। लण् ६। ज म ङ ण न म् ७। भ भ ञ् ८। घ ढ ध ष् ९। ज ब ग ड द श् १०। ख फ छ ठ थ च ट त व् ११। क प य् १२। श ष स र् १३। हल् १४।
उल्लेखनीय है कि इन प्रत्याहार-सूत्रों का अष्टाध्यायी के प्रत्याहार-सूत्रों से पर्याप्त साम्य है। शब्दार्णव-चन्द्रिका के प्रत्याहार-सूत्र इस प्रकार हैं—

“अ इ उण् १। ऋक् २। एओङ् ३। ऐ औच् ४। हय वर लण् ५। ज म ङ ण न म् ६। भ म ञ् ७। घ ढ ध ष् ८। ज ब ग ड द श् ९। ख फ छ ठ थ च ट त व् १०। क प य् ११। श ष स अं अः क पर् १२। हल् १३।”

देवनन्दितपूजेशेनमस्तस्मै स्वयम्भुवे ॥ —मंगल श्लोक, जै० व्या०, पृ० १.

१. सिद्धिरनेकान्तात्, वही, १/१/१.
२. आकालोऽच् प्र-दी-पः, वही, १/१/११.
३. इकस्तौ, वही, १/१/१७.
४. अदेङ्प, वही, १/१/१६.
५. आर्देणैप्, वही, १/१/१५.
६. ऋलिकः, जै० व्या०, १/१/८३.
७. इग् यणो जिः, वही, १/१/४५.
८. हलोऽनन्तराः स्फः, वही, १/१/३.
९. चतुर्वेदी, महादेव, जै० म० वृ०, भूमिका, पृ० १४.

पंचाध्यायी एवं शब्दाणवचन्द्रिका के सूत्रपाठ में भिन्नता होने के कारण प्रत्याहार-सूत्रों में निम्नलिखित अन्तर है :

- (क) पंचाध्यायी के 'ऋलृक्' प्रत्याहार सूत्र के स्थान पर शब्दार्णवकार ने 'ऋक्' प्रत्याहार सूत्र दिया है।
- (ख) शब्दार्णवकार ने अनुस्वार, विसर्ग, जिह्वामूलीय तथा उपध्मानीय का भी शर् प्रत्याहार के अन्तर्गत समावेश किया है।
- (ग) "ह य व र ट् । लण्" इन दो प्रत्याहार-सूत्रों के स्थान पर शब्दार्णवकार ने "ह य व र ल ण्" प्रत्याहार सूत्र दिया है।

पं० युधिष्ठिर मीमांसक के मतानुसार भी जैनेन्द्र-व्याकरण में प्रत्याहार सूत्र थे तथा अभयनन्दी उन प्रत्याहार सूत्रों से परिचित थे। जैनेन्द्र-महावृत्ति के आरम्भ में प्रत्याहार-सूत्रों की अनुपलब्धि के विषय में उनका विचार है कि या तो अभयनन्दी ने उन सूत्रों पर टीका लिखना आवश्यक न समझा अथवा प्रत्याहार सूत्रों की व्याख्या नष्ट हो गई तथा बाद में जैनेन्द्र-व्याकरण में उन प्रत्याहार सूत्रों का भी अभाव हो गया।¹

जैनेन्द्र-व्याकरण में प्रयुक्त संज्ञाएँ—

जैनेन्द्र-व्याकरण में उपलब्ध संज्ञाएँ अत्यन्त जटिल हैं। अनेक संज्ञाएँ सांकेतिक हैं। जैनेन्द्र-व्याकरण के सूत्रों में अष्टाध्यायी के सूत्रों से समानता होते हुए भी कई स्थानों पर संज्ञाओं की दृष्टि से नूतनता देखी जाती है। इन संज्ञाओं के कारण ही जैनेन्द्र-व्याकरण अन्य व्याकरणों से भिन्न मौलिक व्याकरण-ग्रन्थ कहा जाता है। जैनेन्द्र-व्याकरण की कतिपय संज्ञाएँ एकाक्षरी तथा बीजगणितीय हैं। अष्टाध्यायी में अधिकांश संज्ञाएँ अन्वर्थक हैं किन्तु यहाँ पर ये संज्ञाएँ सार्थक या अन्वर्थक नहीं हैं। साधारण अध्येता के लिए इन संज्ञाओं को प्रथम दृष्टि में ही समझना कठिन है। इन्हीं संज्ञाओं के कारण यह व्याकरण-ग्रन्थ क्लिष्ट बन गया है। पूज्यपाद देवनन्दी ने "अपृक्त" एवं "कर्मप्रवचनीय" संज्ञाओं को अनावश्यक जानकर जैनेन्द्र-व्याकरण में स्थान नहीं दिया है। जैनेन्द्र-व्याकरण में प्रयुक्त संज्ञाओं को निम्ननिर्दिष्ट पाँच वर्गों में विभक्त किया जा सकता है—

१. परम्परा से प्राप्त संज्ञाएँ—

पूज्यपाद देवनन्दी ने प्रातिशाख्यों से अनुदात्त^१, अनुस्वार^१, उदात्त^१, कृन्^१, ति^१, द्वन्द्व^१, पद^१, विभक्ति^१, विराम^१, विसर्जनीय^१ एवं स्वरित^१ संज्ञाओं का ग्रहण किया है तथा अष्टाध्यायी में प्रयुक्त अधिकरण^१, अपादान^१, इत्^१, करण^१, कर्ता^१, कर्म^१, टि^१, भ^१, युवा^१,

१. मीमांसक, युधिष्ठिर, जै० म० वृ०, भूमिका, पृ० ४४-४५.
२. तुलना करें—जै० व्या० १/१/१३, ऋग्वेद प्रातिशाख्य ३/१, सम्पा० सिद्धेश्वर ऋषिपात्र्य, वाराणसी, १९७०.
३. तु०—वही, ५.४.७; वही, १.५.
४. तु०—वही, १.१.१३; वही, ३.१.
५. तु०—वही, २.१.८०; वाजसनेयि प्रातिशाख्य १.२७; सम्पादक—वी० वेङ्कटराम शर्मा, मद्रास, १९३४.
६. तु० वही, १.२.१३१; ऋक्तन्त्र २६, सम्पादक—सूर्यकान्त, देहली, १९७०.
७. तु०—वही, १.३.६२; वा० प्रा० ३.१२७.
८. तु—वही, १.२.१०३; वही, ३.२., ८.४६.
९. तु०—वही, १.२.१५७; वही ५.१३.
१०. तु०—वही, ५.४.१६; ऋक्त० ३६.
११. तु०—वही, ५.४.१६; ऋग्वेद प्रातिशाख्य १.५ सम्पा०-हिचटनी-१८६२.
१२. तु०—वही, १.१.१४; ऋक्तप्राति० ३.१.
१३. तु०—वही, १.२.११६; ऋग्वेद० १.४.४५.
१४. तु०—वही, १.२.११०; वही, १.४.२४.
१५. तु०—वही, १.२.३; वही, १.३.२.
१६. तु०—वही, १.२.११४; वही, १.४.४२.
१७. तु०—वही, १.२.१२५; वही, १.४.५४.
१८. तु०—वही, १.२.१२०; वही, १.४.४६.
१९. तु०—वही, १.१.६५; वही, १.१.६४.
२०. तु०—वही, १.२.१०७; वही, १.४.१८.
२१. तु०—वही, ३.१.८१; वही, ४.१.१६३.

संख्या', सत्, सम्प्रदान', सर्वनाम' एवं हेतु' संज्ञाओं का उसी स्वरूप में प्रयोग किया है। पूज्यपाद देवन्दी ने उपरिनिर्दिष्ट संज्ञाओं में से अनुस्वार, विराम तथा विसर्जनीय संज्ञाओं को परिभाषित न करके, जैनेन्द्र-व्याकरण के सूत्रों में उनका प्रयोग किया है। चन्द्रगोमी का अनुकरण करते हुए पूज्यपाद देवन्दी ने एकवचन, द्विवचन तथा बहुवचन के लिए क्रमशः एक, द्वि तथा बहु संज्ञाओं का प्रयोग किया है।^१

२. जैनेन्द्र-व्याकरण में प्रयुक्त नवीन संज्ञाएँ—

पूज्यपाद देवन्दी ने व्याकरण का मौलिक स्वरूप प्रस्तुत करने के लिए अपने से पूर्ववर्ती व्याकरण-ग्रन्थों में विद्यमान अधिकांश संज्ञाओं के स्थान पर भिन्न संज्ञाओं का प्रयोग किया है जो इस प्रकार हैं—

क० व्या०	अष्टा०	का० व्या०
१. अग, २/४/६४.	आर्धधातुक, ३/४/११४.	—
२. अन्य, १/२/१५२.	प्रथम, १/४/१०१.	प्रथम, आ० प्र० ३.
३. अस्मद्, १/२/१५२.	उत्तम, १/४/१०१.	उत्तम, वही, ३.
४. इल्, १/१/३४.	षट्, १/१/२४.	—
५. उङ्, १/१/६६.	उपधा, १/१/६५.	उपधा, च० प्र० ११.
६. उज्, १/१/६२.	श्लु, १/१/६१.	—
७. उप्, १/१/६२.	लुक्, १/१/६१.	—
८. उस्, १/१/६२.	लुप्, १/१/६१.	—
९. एप्, १/१/१६.	गुण, १/१/२.	गुण, आ० प्र० ४३८.
१०. ऐप्, १/१/१५.	वृद्धि, १/१/१.	वृद्धि, वही, ४३९.
११. कि, १/४/५६.	सम्बुद्धि, २/३/४६.	सम्बुद्धि, च० प्र० ५.
१२. खम्, १/१/६१.	लोप, १/१/६०.	—
१३. ग, २/४/६३.	सार्वधातुक, ३/४/११३.	सार्वधातुक, आ० प्र० ३४.
१४. गि, १/२/१३०.	उपसर्ग, १/४/५६.	—
१५. गु, १/२/१०२.	अङ्ग, १/४/१३.	—
१६. घि, १/२/६६.	लघु, १/४/१०.	—
१७. ड, १/१/४.	अनुनासिक, १/१/८.	अनुनासिक, सं० प्र० १३.
१८. च, ४/३/६.	अभ्यास, ६/१/४.	अभ्यास, आ० प्र० ८५.
१९. जि, १/१/४५.	सम्प्रसारण, १/१/४५.	सम्प्रसारण, आ० प्र० ४३७.
२०. ऋ, ४/१/११७.	घ, १/१/२२.	—
२१. ऋि, १/१/७४.	अव्यय, १/१/३७.	अव्यय, च० प्र० २१०.
२२. त, १/१/२८.	निष्ठा, १/१/२६.	निष्ठा, कृ० प्र० ८४.
२३. थ, ४/३/४.	अभ्यस्त, ६/१/५.	अभ्यस्त, आ० प्र० ८६.
२४. दि, १/१/२०.	प्रगृह्य, १/१/११.	प्रकृत्या, सं० प्र० ४२.
२५. दु, १/१/६८.	वृद्ध, १/१/७३.	—
२६. द्वि, ४/२/६.	तद्राज, ५/३/११६.	—
२७. ध, १/१/३१.	सर्वनामस्थान, १/१/४२.	घुट्, च० प्र० ३.
२८. न्यक्, १/३/६३.	उपसर्जन, १/२/४३.	—
२९. प्र, १/१/११.	ह्रस्व, १/२/२७.	ह्रस्व, सं० प्र० ५.

१. तु०—वही, १/१/३३; वही, १/१/२३.
२. तु०—वही, २/२/१०५; वही, ३/२/१२७.
३. तु०—वही, १/२/१११; वही, १/४/३२.
४. तु०—वही, १/१/३५; वही, १/१/२७.
५. तु०—वही, १/२/१२६; वही १/४/५५.
६. तु०—वही, १/२/१५५; चा० व्या० १/४/१४८.

जै० व्या०
३०. बोध्यम्, १/४/५५.
३१. भु, १/१/२७.
३२. मु, १/२/६२.
३३. मृत्, १/१/५.
३४. म्रि, ५/३/२.
३५. युष्मद्, १/२/१५२.
३६. र', १/३/४७.
३७. वाक्, २/१/७६.
३८. वृद्ध, ३/१/७८.
३९. व्य', २/१/८२.
४०. सु, १/२/६७.
४१. स्फ, १/१/३.
४२. स्व', १/१/२.
४३. ह, १/३/४.
४४. हृत्, ३/१/६१.

अव्या०
आमन्त्रित, २/३/४८.
वु, १/१/२०.
नदी, १/४/३.
प्रातिपदिक, १/२/४५.
आम्नेदित, ८/१/२.
मध्यम, १/४/१०१.
द्विगु, २/१/५२.
उपपद, ३/१/६२.
गोत्र, ४/१/१६२.
कृत्य, ३/१/६५.
धि, १/४/७.
संयोग, १/१/७.
सवर्ण, १/१/६.
अव्ययीभाव, २/१/५.
तद्धित, ४/१/७६.

का० व्या०
आमन्त्रित, च० प्र० ५.
वा, भा० प्र० ८.
नदी, च० प्र० ६.
लिङ्ग, च० प्र० १.
—
मध्यम, आ० प्र० ३.
द्विगु, च० प्र० २६५.
उपपद, कृ० प्र० ८६.
—
कृत्य, कृ० प्र० १३०
अग्नि, च० प्र० ८.
—
सवर्ण, सं० प्र० ४.
अव्ययीभाव, च० प्र० २७२
—

३. पाणिनीय संज्ञाओं के संक्षिप्त रूप—

जैनेन्द्र-व्याकरण में उपलब्ध कुछ संज्ञाएँ तो बिल्कुल अष्टाध्यायी की संज्ञाओं के संक्षिप्त रूप प्रतीत होती हैं। पाणिनीय संज्ञाओं के आदि, मध्य अथवा अन्तिम भाग को हटाकर नवीन संज्ञाओं का निर्माण किया गया है। नीचे दी गई तालिका से यह सुस्पष्ट है—

जै० व्या०	अष्टा०	का० व्या०
१. त्य, २/१/१.	प्रत्यय, ३/१/१.	प्रत्यय, आ० प्र० ३५.
२. द', १/२/१५१.	आत्मनेपद, १/४/१००.	आत्मनेपद, वही, २.
३. दी, १/१/११.	दीर्घ, १/२/२७.	दीर्घ, सं० प्र० ६.
४. धु, १/२/१.	धातु, १/३/१.	धातु, आ० प्र० ६
५. नप्, १/१/७.	नपुंसक, १/२/४७.	—
६. ति, १/२/१२७.	निपात, १/४/५६	निपात, सं० प्र० ४२
७. प, १/१/११.	प्लुत, १/२/२७.	—
८. ब, १/३/८६.	बहुव्रीहि, २/२/२३.	बहुव्रीहि, च० प्र० २६७.
९. म', १/२/१५०.	परस्मीपद, १/४/६६	परस्मीपद, आ० प्र० १.
१०. य, १/३/४४.	कर्मधारय, १/२/४२.	कर्मधारय, च० प्र० २६३.
११. रु, १/२/१००	गुह, १/४/११	—
१२. ष, १/३/१६.	तत्पुरुष, २/१/२२.	तत्पुरुष, च० प्र० २६५.
१३. स, १/३/२.	समास, २/१/३.	समास, वही, २५६.

४. विभक्ती शब्द का विभाजन करके प्राप्त संज्ञाएँ—

जैनेन्द्र-व्याकरण में ईकारान्त 'विभक्ती' शब्द के प्रयोग का प्रयोजन इप् (द्वितीया) एवं ईप् (सप्तमी) संज्ञाओं में भिन्नता लाना है। 'विभक्ती' शब्द के स्वर एवं व्यंजनों को पृथक्-पृथक् करके 'तासामाप्परास्तद्धलच' (जै० व्या० १/२/१५८) सूत्र के आधार पर स्वरों

१. ऋषतन्त्र में पर, रेफ एवं स्वर के लिए 'र' का प्रयोग किया गया है। इ०-ऋषत० २७०, १०७, २६.
२. ऋषतन्त्र में 'तालव्य' के लिए 'व्य' का प्रयोग किया गया है। इ०-वही, २४१.
३. ऋषतन्त्र में 'ह्रस्व' के लिए 'स्व' का प्रयोग मिलता है। इ०-वही, २५, १५०.
४. ऋषतन्त्र में 'पद' के लिए 'द' का प्रयोग किया गया है। इ०-ऋषत० ६६.
५. ऋषतन्त्र में 'विराम' के लिए 'म' का प्रयोग उपलब्ध है। इ०-वही, ५४.

जैन प्राच्य विद्याएँ

१४७

के आगे 'प्' तथा व्यंजनों के आगे 'आ' लगाकर प्रथमा आदि विभक्तियों की नवीन संज्ञाएँ प्रस्तुत करना पूज्यपाद देवनन्दी की विलक्षणता है। संस्कृत भाषा के किसी भी वैयाकरण ने इस प्रकार से "विभक्ती" शब्द के आधार पर प्रथमा आदि विभक्तियों के नाम नहीं दिए हैं। व्याकरण के क्षेत्र में यह पूज्यपाद देवनन्दी की एक उत्कृष्ट देन है—

जै० व्या०

१. वा, १/२/१५८.
२. इप्, १/२/१५८.
३. भा, १/२/१५८.
४. अप्, १/२/१५८.
५. का, १/२/१५८.
६. ता, १/२/१५८.
७. ईप्, १/२/१५८.

अष्टा०

- प्रथमा, २/३/४६.
- द्वितीया, २/३/२.
- तृतीया, २/३/१८.
- चतुर्थी, २/३/१३.
- पंचमी, २/३/२८.
- षष्ठी, २/३/५०.
- सप्तमी, २/३/३६.

५. मौलिक संज्ञाएँ—

अनेक व्याकरण-विषय अन्वर्थक यौगिक शब्दों के लिए पूज्यपाद देवनन्दी ने नई संज्ञाओं का प्रयोग करके मौलिकता और पाणिनीय व्याकरण से भिन्नता दर्शाने का प्रयत्न किया है। जैसे—

जै० व्या०

१. खु, १/१/२६.
२. डि, १/१/३०.
३. द्यु, १/३/१०५.
४. घि, १/२/२.

अष्टा०

- संज्ञा, २/१/२१.
- भावकर्म, १/३/१३.
- उत्तरपद, २/१/५१.
- अकर्मक, १/३/२६.

'द्यु' संज्ञा के विषय में यह निश्चित नहीं है कि यह मौलिक संज्ञा है अथवा नहीं। हो सकता है कि महाभाष्य में विद्यमान 'द्यु' पाठ^३ अशुद्ध हो एवं इसके स्थान पर 'द्यु' पाठ ही शुद्ध हो। ऐसी अवस्था में सम्भव है कि इस संज्ञा को पूज्यपाद देवनन्दी ने महाभाष्य से लिया हो। डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल के अनुसार—“जैनेन्द्र सूत्र १/३/१०५ में उत्तरपद की द्यु-संज्ञा मानी गई है। पतंजलि के महाभाष्य में सूत्र ७/३/३ पर प्रलोकवार्तिक में द्यु पाठ है और वहाँ 'किमिदं घोरिति उत्तरपदस्येति' लिखा है। सूत्र ७/१/२१ के भाष्य में अद्यु को अनुत्तरपद का पर्याय माना है पर कीलहार्न का सुझाव था कि घु का शुद्ध पाठ द्यु होना चाहिए। वह बात जैनेन्द्र के सूत्र १/३/१०५ 'उत्तरपदं द्यु' से निश्चयेन प्रमाणित हो जाती है। और अब भाष्य में भी द्यु ही शुद्ध पाठ मान लेना चाहिए।”

परिभाषा सूत्र—

अष्टाध्यायी एवं जैनेन्द्र-व्याकरण के परिभाषा सूत्रों में पर्याप्त समानता है। परिभाषा सूत्रों में पूज्यपाद देवनन्दी ने केवल ऐसे दो सूत्र दिए हैं जिनका कि पूर्ववर्ती व्याकरण-ग्रन्थों में अभाव है। ये दो सूत्र पूज्यपाद देवनन्दी की विद्वत्ता के परिचायक हैं। ये सूत्र हैं— “नब्बाध्य आसम्” (जै० व्या० १/२/६१) एवं “सूत्रेऽस्मिन् सुब्विधिरिष्टः” (जै० व्या० ५/२/११४)। “नब्बाध्य आसम्” सूत्र में पूज्यपाद देवनन्दी ने जैनेन्द्र व्याकरण के सूत्रों के विनियोग की ओर निर्देश किया है। इस सूत्र के अनुसार पुल्लिङ्ग अथवा स्त्रीलिङ्ग में निर्दिष्ट संज्ञा से नपुंसकलिङ्ग में निर्दिष्ट संज्ञा का बोध होता है। उदाहरणतः 'प्रो घि च' (जै० व्या० १/२/६६) सूत्र के अनुसार 'कुण्डा' शब्द के 'उ' की 'घि' संज्ञा है तथा 'घि' शब्द नपुंसकलिङ्ग में है किन्तु 'स्फे रुः' (जै० व्या० १/२/१००) सूत्र में 'रुः' शब्द पुल्लिङ्ग

१. वाजसनेयिप्रातिशाख्य में प्रत्येक वर्ण के अन्तिम तीन वर्णों तथा य र ल व एवं ह की (कुल २० वर्णों की) 'घि' संज्ञा की गई है। —द्र० वा० प्रा० १/५३.
२. यत् वृद्धिरचामादेस्तत्र चावन्न घोहि सा ।] महाभाष्य, तृतीय खण्ड, भोतिलाल बनारसीदास, १९६७, पृ० १६४.
३. अग्रवाल, वासुदेवशरण, जै० म० वृ०, भूमिका, पृ० १२.

में है तथा इस पुल्लिङ्ग 'रु' संज्ञा के द्वारा नपुंसकलिङ्ग में निर्दिष्ट 'घि' संज्ञा का बोध होता है। इस प्रकार 'कुण्डा' शब्द में विद्यमान 'उ' की 'रु' (गुरु) संज्ञा होने के कारण 'सरोर्हलः' (जै० व्या० २/३/८५) सूत्र से अस् प्रत्यय एवं 'अजाद्यतष्टाप्' (जै० व्या० ३/१/४) सूत्र से टाप् प्रत्यय होकर 'कुण्डा' रूप सिद्ध हुआ है।

दूसरा महत्वपूर्ण परिभाषासूत्र 'सूत्रेऽस्मिन् सुब्विधिरिष्टः' (जै० व्या० ५/२/११४) है। यह सूत्र जैनेन्द्र-व्याकरण के सूत्रों में विद्यमान शब्दों के वचनों एवं कारकों पर प्रभाव डालता है। जिस शब्द के प्रसंग में इस सूत्र की प्राप्ति होती है वहाँ उस शब्द के मौलिक वचन अथवा कारक का लोप होकर तद्भिन्न अन्य वचन एवं कारक का प्रयोग किया जाता है, किन्तु सूत्र के अर्थ को समझने के लिए उसके मौलिक कारक एवं वचन को ही स्वीकार करना पड़ता है। यह सूत्र जैनेन्द्र-व्याकरण के सूत्रों में विद्यमान शब्दों के वचनों पर किस प्रकार प्रभाव डालता है, यह निम्न उदाहरणों से सुस्पष्ट है—

- (क) 'आकालोऽच् प्रदीपः' (जै० व्या० १/१/११) सूत्र में 'प्र दी प' के पश्चात् प्रथमा विभक्ति बहुवचन के 'जस्' प्रत्यय का प्रयोग होना चाहिए किन्तु 'सूत्रेऽस्मिन् सुब्विधिरिष्टः' (जै० व्या० ५/२/११४) सूत्र के अनुसार प्रथमा विभक्ति एकवचन के 'सु' प्रत्यय का प्रयोग किया गया है।^१
- (ख) 'आदैगैप्' (जै० व्या० १/१/१५) सूत्र में 'आदैग्' के पश्चात् प्रथमा विभक्ति बहुवचन के 'जस्' प्रत्यय के स्थान पर प्रथमा विभक्ति एकवचन के 'सु' प्रत्यय का प्रयोग किया गया है।^२
- (ग) 'किरश्च पञ्चभ्यः' (जै० व्या० ५/१/१३४) सूत्र में 'किरादिभ्यः' शब्द के 'आदि' अंश का लोप करके पंचमी विभक्ति बहुवचन के 'भ्यस्' प्रत्यय के स्थान पर पंचमी विभक्ति एकवचन के 'इसि' प्रत्यय का प्रयोग किया गया है।^३
- (घ) 'स्त्रीगोर्नीचः' (जै० व्या० १/१/८) सूत्र में 'गो' शब्द के पश्चात् षष्ठी-विभक्ति बहुवचन के 'आम्' (नाम्) प्रत्यय के स्थान पर षष्ठी-विभक्ति एकवचन के 'इस्' प्रत्यय का प्रयोग किया गया है।^४ किन्तु सूत्र की व्याख्या करते समय 'गो' शब्द के पश्चात् षष्ठी विभक्ति बहुवचन के प्रत्यय का ही प्रयोग इष्ट है।

यह सूत्र जैनेन्द्र-व्याकरण के सूत्रों में विद्यमान शब्दों के कारकों पर भी प्रभाव डालता है। निम्न उदाहरण इसके प्रमाण हैं—

- (क) 'अतोऽहन्' (जै० व्या० ५/४/११) सूत्र में 'अहन्' शब्द षष्ठी विभक्ति एकवचन में निर्दिष्ट है किन्तु व्याख्या करते समय 'अहन्' शब्द को प्रथमान्त ही मानकर व्याख्या करनी चाहिए।^५
- (ख) 'अतोयेय्' (जै० व्या० ५/१/१३६) सूत्र में विद्यमान 'या' के परे षष्ठी विभक्ति एकवचन के 'इस्' प्रत्यय का प्रयोग होना चाहिए किन्तु 'सूत्रेऽस्मिन् सुब्विधिरिष्टः' सूत्र के प्रभाव के कारण 'इस्' प्रत्यय का लोप हो गया है।^६
- (ग) 'तदर्थं विकृतेः प्रकृतौ' (जै० व्या० ३/४/११) सूत्र में विद्यमान 'तदर्थ' शब्द 'प्रकृति' शब्द का विशेषण है तथा ऐसा होने पर 'तदर्थ' शब्द से स्त्रीलिङ्ग एवं सप्तमी विभक्ति की प्राप्ति होती है, किन्तु 'सूत्रेऽस्मिन् सुब्विधिरिष्ट' सूत्र के

१. प्र-दी-प इति 'सूत्रेऽस्मिन् सुब्विधिरिष्टः' (५/२/११४) इति जसः स्थाने सुः। जै० म० वृ० १/१/११.
 २. 'आदैगैप्' (१/१/१५) इत्यत्र 'सूत्रेऽस्मिन् सुब्विधिरिष्टः' इति जसः स्थाने सुः। वही, १/१/१५.
 ३. किर इति आदिशब्दस्य खे 'सूत्रेऽस्मिन् सुब्विधिरिष्टः' (५/२/११४) इति भ्यसः स्थाने इसिः। जै० म० वृ० ५/१/१३४.
 ४. उदाहरणम्—'स्त्रीगोर्नीचः' (१/१/८) स्त्रीगूनामिति प्राप्त सुब्विधिरयम्। वही, ५/२/११४.
 ५. 'सूत्रेऽस्मिन् सुब्विधिरिष्टः' (५/२/११४) इति तास्थाने वानिर्देशात् व्याख्येयः। वही, ५/४/११.
 ६. या इत्येतत् 'सुब्वेऽस्मिन्' (५/२/११४) इति इसः खम्। वही, ५/१/१३६.

प्रभाव के कारण प्रथमा विभक्ति एकवचन का ही प्रयोग किया गया है।¹ इस सूत्र की व्याख्या करते समय 'तदर्थायां प्रकृतौ' ही अभिप्रेत है।

(घ) 'मिङ्कार्थे वाः' (जै० व्या० १/४/५४) सूत्र में विद्यमान 'वा' (प्रथमा विभक्ति) के परे युक्त प्रथमा विभक्ति एकवचन के 'सु' प्रत्यय का 'हल्ङ्यापो षः सुसिप्चनच्' (जै० व्या० ४/३/५६) सूत्र से लोप होना चाहिए पर 'सूत्रेऽस्मिन् सुब्विधिरिष्टः' सूत्र के प्रभाव के कारण 'सु' का लोप नहीं हुआ। 'सुप्' प्रत्ययों के अन्तर्गत 'टाप्' प्रत्यय भी सम्मिलित है तथा सुब्विधि इष्ट होने के कारण हलन्त 'व्' के पश्चात् 'टाप्' प्रत्यय युक्त किया गया है।² 'वा' (प्रथमा) के परे विसर्जनीय के प्रयोग का प्रयोजन 'वा' (विभाषा) की सन्देश-निवृत्ति भी है।³

(ङ) 'सेङ्गुले सङ्गः' (जै० व्या० ५/४/६२) सूत्र में सङ्ग शब्द के पश्चात् षष्ठी विभक्ति एकवचन के स्थान पर प्रथमा विभक्ति एकवचन के 'सु' प्रत्यय का प्रयोग किया गया है।⁴

इस प्रकार उपर्युक्त दो परिभाषा-सूत्रों का जैनेन्द्र-व्याकरण की सूत्र-व्यवस्था की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण स्थान है।

सन्धि-सूत्र—

पूज्यपाद देवनन्दी ने जैनेन्द्र-व्याकरण के चतुर्थ अध्याय के तृतीय पाद⁵ तथा पंचम अध्याय के चतुर्थपाद⁶ के अधिकांश सूत्रों में सन्धि नियमों को प्रस्तुत किया है। अन्य कुछ सन्धि नियम जैनेन्द्र-व्याकरण के पंचम अध्याय के तृतीय पाद में भी उपलब्ध होते हैं।⁷ सन्धि नियमों का प्रतिपादन करते हुए पूज्यपाद देवनन्दी ने पूर्ण रूप से पाणिनि का ही अनुकरण किया है। सन्धि प्रकरण के अनेक सूत्र जैनेन्द्र-व्याकरण में अष्टाध्यायी से बिना किसी परिवर्तन के उद्धृत किए गए हैं। उदाहरण के लिए—

जै० व्या०	अष्टा०
१. एङि पररूपम् ४/१/८१.	एङि पररूपम्, ६/१/६४
२. एचोऽयवायावः, ४/३/६६.	एचोऽयवायावः, ६/१/७८.
३. झलां जश् झशि, ५/४/१२८.	झलां जश् झशि, ८/४/५३.
४. नपरे नः, ५/४/११.	नपरे नः, ८/३/२७.
५. नश्चापदान्तस्य झलि, ५/४/८.	नश्चापदान्तस्य झलि, ८/३/२४.
६. शश्छोऽटि, ५/४/१३७.	शश्छोऽटि, ८/४/६३.
७. ष्टना ष्टः, ५/४/१२०.	ष्टना ष्टः, ८/४/४१.

सुबन्त सूत्र—

जैनेन्द्र-व्याकरण के चतुर्थ अध्याय के चतुर्थ पाद⁸ तथा पंचम अध्याय के प्रथम⁹ तथा तृतीय¹⁰ पादों में अधिकांश सुबन्त सूत्र उपलब्ध होते हैं। जैनेन्द्र-व्याकरण के चतुर्थ अध्याय के ही तृतीय¹¹ तथा पंचम अध्याय के द्वितीय¹² एवं चतुर्थ¹³ पादों में सुबन्त संबंधी सूत्रों की संख्या अपेक्षाकृत कम है। प्रथम अध्याय के द्वितीय पाद में भी दो सुबन्त संबंधी सूत्र उपलब्ध होते हैं।¹⁴

- तदर्थमित्येतत्प्रकृतेर्विशेषणम् । तदर्थायां प्रकृताविति । यद्येवं स्त्रीलिङ्गमीप् च प्राप्नोति । 'सूत्रेऽस्मिन् सुब्विधिरिष्टः' (५/२/११४) इने वा (इतोपो) काया एकेन च निर्वेणः । जै० म० वृ० ३/४/११.
- 'मिङ्कार्थे वाः' (१/४/५४) हल्ङ्यादिना सुब्वं प्राप्तम् । सुपो विधिरयम् । अथ विति हलन्तात् कथं टाप् । अयमपि सुपो विधिरिष्टः । आ कपः पकारेण सुपो ग्रहणात् । वही, ५/२/११४.
- विसर्जनीयो विभाषा सन्देशनिवृत्त्यर्थम् । वही, १/४/५४.
- सङ्ग इत्यत्र 'सूत्रेऽस्मिन् सुब्विधिरिष्टः' (५/२/११४) इति ङसः स्थाने सुः । वही, ५/४/६२.
- जै० व्या० ४/३/६०-७३, ७५-८०, ८२-१०६, २१६.
- वही, ५/४/१-३६, ११६-१२३, १२५-१४०.
- वही, ५/३/५७, ७६, ७८, ८०-८४.
- वही, ५/४/१, ३-१२, ७२, ७४, ७५, ७८-८०, ११८-१२२, १२४-१२७, १२९.
- वही, ५/१/८/२६, ३४-३६, ४६-७३, १४३-१७१.
- वही, ५/३/१४-२६, २८-३०, ४२, ४६-५१, ५३, ५४, ७५, ७७, ७९, ८३, ८५, ८६, ८८, ८९.
- वही, ५/३/५६-५८, १६७-२०१, २१५, २२६, २३३.
- वही, ५/२/६७-११३, १५०.
- वही, ५/४/२४, ३७, ३८, ३९, ८५, ८६, ८६.
- वही, १/२/१५६, १५७.

अष्टाध्यायी में उपलब्ध 'प्रातिपदिक' संज्ञा' के स्थान पर जैनेन्द्र-व्याकरण में 'मृत्' संज्ञा का प्रयोग किया गया है। जैनेन्द्र-व्याकरण में दी गई कृत्, हृत् आदि संज्ञाओं के समक्ष यह संज्ञा उचित ही है।

अष्टाध्यायी में 'सुप्' एवं 'तिङ्' प्रत्ययों की 'विभक्ति' संज्ञा की गई है। जैनेन्द्र-व्याकरण में 'विभक्ति' शब्द के स्थान पर ईकारान्त 'विभक्ती' शब्द का प्रयोग किया गया है। 'विभक्ती' शब्द के व्यंजनों तथा स्वरों के आगे क्रमशः आकार तथा पकार के योग से प्रथमा, द्वितीया, तृतीया, चतुर्थी, पंचमी, षष्ठी एवं सप्तमी विभक्तियों के स्थान पर क्रमशः वा, इप्, भा, अप्, का, ता एवं ईप् संज्ञाएँ प्रस्तुत की गई हैं।

पूज्यपाद देवन्दी ने 'सु' आदि प्रत्ययों का उल्लेख जैनेन्द्र-व्याकरण के तृतीय अध्याय के आरम्भ में एक ही सूत्र में किया है।

प्रायः सभी सुबन्त रूपों की सिद्धि में पूज्यपाद देवन्दी ने पाणिनि का ही अनुकरण किया है। पूज्यपाद देवन्दी ने केवल चत्वारः, अनड्वान्, अनड्वाहो, अनड्वाहः एवं अनड्वाहम् शब्दों की सिद्धि अष्टाध्यायी, कातन्त्र एवं चान्द्र-व्याकरण से भिन्न विधि से की है। 'चतुर' एवं 'अनड्वाह' शब्दों से सर्वनामस्थान प्रत्यय परे रहते पाणिनि तथा चन्द्रगोमी ने आम् आगम का विधान किया है। तत्पश्चात् आम् आगम को अन्तिम 'अच्' के पश्चात् ही युक्त करने का नियम है। (चतुर + जस् = चतु आ (म्) र् जस्, अनड्वाह + सु, औ, जस्, अम् औट्-अनडु आ (म्) ह्-सु औ इत्यादि। उसके पश्चात् ही उपर्युक्त शब्दों के 'उ' को यणादेश करके (चत् व् आ र् जस्, अनड् वा ह्-सु औ) चत्वारः, अनड्वान्, अनड्वाहो, अनड्वाहः तथा अनड्वाहम् रूपों की सिद्धि की गई है। शर्ववर्मा ने चत्वार एवं अनड्वाह शब्दों का ही ग्रहण किया है। जैनेन्द्र-व्याकरण में स्वर संबंधी नियमों का अभाव होने के कारण पूज्यपाद देवन्दी ने उदात्त 'आम्' का परित्याग कर दिया है तथा चतुर एवं अनड्वाह के 'उ' के स्थान पर 'घ' (सर्वनाम स्थान) परे रहते 'वा' आदेश करके (चत् वा र् जस्, अनड् वाह्-सु औ) उपर्युक्त रूपों की सिद्धि की है।

इसी प्रकार सम्बुद्धि में 'चतुर' एवं 'अनड्वाह' शब्दों को पाणिनि एवं चन्द्रगोमी ने अम् आगम का विधान किया है। तत्पश्चात् पूर्ववत् मित् होने के कारण 'अम्' आगम को 'अन्त्य' अच् के पश्चात् युक्त किया गया है। (चतु अ (म्) र् जस्, अनडु अ (म्) ह्-सु) तथा यणादि सन्धि करके हे चस्वः तथा हे अनड्वान् रूप सिद्ध किए हैं (चत् व् अ र् जस्, अनड् व् अह्, सु)। शर्ववर्मा ने चत्वार एवं अनड्वाह शब्दों के दीर्घ स्वर (आ) को ह्रस्वादेश किया है। इसके विपरीत पूज्यपाद देवन्दी ने सम्बुद्धि में चतुर एवं अनड्वाह शब्दों के 'उ' को 'व' आदेश किया है। (चत् व् र् जस्, अनड् व ह्-सु)। इन प्रकार उपर्युक्त रूपों की सिद्धि में पूज्यपाद देवन्दी ने तीन सूत्रों के स्थान पर एक सूत्र से ही कार्य चलाकर सरलता लाने का प्रयास किया है। प्रक्रिया में सरलता एवं संक्षेप की दृष्टि से सुबन्त प्रकरण में यह पूज्यपाद देवन्दी की एक उपलब्धि मानी जाएगी।

१. अर्धवदघातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम्, अष्टा० १/२/४५.
२. अष्टु मृत्, जै० व्या० १/१/५.
३. कृदमिङ्, वही. २/१/८०.
४. हृतः, वही, ३/१/६१.
५. विभक्तिश्च, अष्टा० १/४/१०४.
६. 'विभक्ती', जै० व्या० १/२/१५७.
७. तासामाप्यरास्तद्धलच, जै० व्या० १/२/१५८.
८. स्वीजसमोदृष्टाभ्यांभित्ठेभ्यांभ्यम्भित्ठेभ्यांभ्यस्सोसाम्भ्योस्सुप्, वही, ३/१/२.
९. चतुरनड्वाहोरामुदात्तः मित् चोऽन्त्यात्परः, इको यणचि; अष्टा० ७/१/६८; १/१/४७; ६/१/७७.
१०. चतुरनड्वाहोराम्; मित् चोऽन्त्यात् परः; इको यणचि, चा० व्या० ५/४/५०; १/१/१४; ५/१/७४.
११. चतुरो वाशब्दस्योत्वम्; अनड्वाहश्च; कातन्त्र-व्याकरण, चतुष्टय प्रकरण. ११८; ११९. सम्पा० गुरुनाथ विद्यानिधि अष्टाचार्य. कलकत्ता. बङ्गाद, १३१६.
१२. चतुरनड्वाहोर्वा, जै० व्या० ५/१/७२.
१३. एकवचनं संबुद्धिः, अष्टा० २/३/४६.
१४. अम्संबुद्धौ; मित् चोऽन्त्यात्परः; इको यणचि; वही, ७/१/६६; १/१/४७; ६/१/७७.
१५. अम् सो सम्बुद्धौ; मित् चोऽन्त्यात् परः; इको यणचि; चा० व्या० ५/४/५१; १/१/१४; ५/१/७४.
१६. सम्बुद्धौवृत्तयोर्ह्रस्वः; का० व्या०, च० प्र० १२१.
१७. वः को, जै० व्या० ५/१/७३.

अन प्राच्य विद्याएँ

स्त्रीप्रत्यय—

पूज्यपाद देववन्दी ने जैनेन्द्र-व्याकरण के तृतीय अध्याय के प्रथम पाद के आरम्भिक सूत्रों में स्त्रीप्रत्ययों का निर्देश किया है।^१ जैनेन्द्र-व्याकरण के अन्य कुछ सूत्रों में भी 'स्त्रीप्रत्ययान्त' शब्द बनाने के नियम उपलब्ध होते हैं।^२

अष्टाध्यायी में पुल्लिंग से स्त्रीलिंग शब्द बनाने के लिए टाप्^३, डाप्^४, चाप्^५, डीप्^६, डीष्^७, डीन्^८, ऊङ्^९ एवं ति^{१०} प्रत्ययों का ही विधान किया गया है। चान्द्र-व्याकरण में प्रयुक्त स्त्रीप्रत्यय चाप्^{११}, डाप्^{१२}, डीप्^{१३}, डीष्^{१४}, ऊङ्^{१५} एवं ति^{१६} हैं।

संक्षेप की दृष्टि से पूज्यपाद देववन्दी ने अष्टाध्यायी की अपेक्षा जैनेन्द्र-व्याकरण के स्त्री-प्रत्ययों में कमी की है। उनके द्वारा प्रयुक्त स्त्री-प्रत्यय छः हैं—

आप्^{१७}, टाप्^{१८}, डाप्^{१९}, डी^{२०}, ऊ^{२१} तथा ति^{२२}। अष्टाध्यायी के डीप्, डीष्, डीन् एवं चान्द्र व्याकरण के डीप् एवं डीष् स्त्रीप्रत्यय अनुबन्धों की दृष्टि से भिन्न हैं। उपर्युक्त व्याकरण-ग्रन्थों में प्, ष् एवं न् अनुबन्धों का स्वर संबंधी नियमों के कारण ही प्रयोग किया गया है।

स्वर प्रकरण से संबंधित नियमों का अभाव होने के कारण ही पूज्यपाद देववन्दी ने अनुबन्ध-रहित डी प्रत्यय का प्रयोग किया है।

पाणिनि ने 'पति' शब्द के इकार के स्थान पर 'न' आदेश करके एवं 'डीप्' प्रत्यय के योग से यज्ञ के विषय में 'पत्नी' शब्द की रचना की है। पाणिनि के अनुसार 'पत्नी' शब्द यज्ञ के प्रसंग में ही बनता है।^{२३}

चान्द्र-व्याकरण में √ वह् धातु से क्त एवं टाप् प्रत्यय के योग से निष्पन्न ऊडा (विधिवत् विवाहित) शब्द के अर्थ में पत्नी शब्द का निर्माण किया गया है।^{२४}

१. जै० व्या० ३/१/३-६६.
२. वही, ४/२/१३२, ४/४/१३६-१४०, ५/२-५०-५३.
३. अजाद्यतष्टाप्, अष्टा० ४/१/४.
४. ढाबुभाभ्यामन्यतरस्याम्, वही, ४/१/१३.
५. यङ्श्चाप्, वही, ४/१/७४.
६. ऋनेभ्योडीप्, वही, ४/१/५.
७. अन्यतो डीष्, वही, ४/१/४०.
८. शाङ्गरवाद्यमो डीन्, वही, २/१/७३.
९. ऊङुतः, वही, ४/१/६६.
१०. यूनस्तिः, वही, ४/१/७७.
११. यङ्श्चाप्; चा० व्या० २/३/८०.
१२. ताभ्यां डाप्, वही २/३/१४,
१३. ऋनो डीप्, वही, २/३/२.
१४. षितो डीष्, वही, २/३/३६.
१५. ऊङ् उतः, वही, २/२/७५.
१६. यूनस्तिः, वही, २/३/८१.
१७. आबट्यात्, जै० व्या० ३/१/५.
१८. अजाद्यतष्टाप्, वही ३/१/४.
१९. मनो डाप् च, वही ३/१/६
२०. उगिदृन्नाडो, वही, ३/१/६.
२१. ऊङुतः, वही, ३/१/५६.
२२. यूनस्तिः, वही, ३/१/६२.
२३. पत्युर्नोयज्ञसंयोगे, अष्टा० ४/१/३३.
२४. पत्युर्नऊठायाम्, चा० व्या० २/३/३०.

पूज्यपाद देवनन्दी के अनुसार 'पत्नी' शब्द निपातन से सिद्ध है।^१ पूज्यपाद देवनन्दी ने पाणिनि एवं चन्द्रगोमी के समान किसी अर्थ विशेष में पत्नी शब्द की व्युत्पत्ति की ओर निर्देश नहीं किया है। अभयनन्दी ने इसी सूत्र की वृत्ति में पत्नी को पुरुष की वित्तस्वामिनी कहकर व्याख्या की है।^२

कारक सूत्र—

पूज्यपाद देवनन्दी ने जैनेन्द्र-व्याकरण के प्रथम अध्याय के द्वितीय^३ तथा चतुर्थ^४ पादों में कारक संबंधी नियमों का प्रतिपादन किया है। "कारक" शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम अष्टाध्यायी में कारक के प्रसंग में अधिकार सूत्र के अन्तर्गत उपलब्ध होता है।^५ पाणिनि का अनुकरण करते हुए पूज्यपाद देवनन्दी ने भी कारक शब्द को जैनेन्द्र-व्याकरण में अधिकार सूत्र में ही स्थान दिया है।^६ पूज्यपाद देवनन्दी ने कर्ता, करण एवं अधिकरणकारकों की परिभाषाएँ अष्टाध्यायी में दी गई परिभाषाओं के समान ही दी हैं।^७

जैनेन्द्र-व्याकरण में सम्प्रदान^८ एवं अपादान^९ कारकों की परिभाषाओं का क्षेत्र अष्टाध्यायी की अपेक्षा अधिक विस्तृत है। इन कारकों की परिभाषाओं के द्वारा पूज्यपाद देवनन्दी ने अष्टाध्यायी में विद्यमान चतुर्थी^{१०} एवं पंचमी^{११} विभक्ति का भिन्न अर्थों में विधान करने वाले अनेक सूत्रों का ग्रहण किया है।

अष्टाध्यायी में अपादान कारक की परिभाषा 'ध्रुवमपायेऽपादानम्' (अष्टा० १/४/२४) है। पूज्यपाद देवनन्दी ने अपादान कारक से सम्बद्ध सूत्र के अर्थ को विस्तृत रूप देने की दृष्टि से 'धी' शब्द का भी सूत्र में ग्रहण किया है। जिसके परिणामस्वरूप कायिक विश्लेष के साथ-साथ बुद्धिपूर्वक विश्लेष में भी जो ध्रुव हो उसकी अपादान संज्ञा की है। अभयनन्दी ने उपर्युक्त सूत्र की व्याख्या में सूत्र के अर्थ को और भी स्पष्ट कर दिया है।^{१२} इस प्रकार सूत्र में 'धी' शब्द को स्थान देकर पूज्यपाद देवनन्दी ने कात्यायन के वार्तिक 'जुगुप्साविराम-प्रमादार्थानामुपसंख्यानम्' (अष्टा० १/४/२४ वा०) का ग्रहण कर लिया है। इस प्रकार 'धी' शब्द के ग्रहण मात्र से ही सूत्र के आकार में वृद्धि का निवारण करने हुए अपादान कारक की परिभाषा को अर्थ की दृष्टि से विस्तृत रूप दिया है।

'नब्बाध्य आसम्' (जै० व्या० १/२/६१) सूत्र को दृष्टि में रखते हुए पूज्यपाद देवनन्दी ने अपादान^{१३} एवं कर्म^{१४} शब्दों का नपुंसकलिङ्ग में प्रयोग किया है।

१. पत्नी, जै० व्या० ३/१/३३.
२. अस्य पुंसः वित्तस्य स्वामिनीत्यर्थः, जै० म० वृ० ३/१/३३.
३. जै० व्या० १/२/१०६—१२५.
४. वही, १/४/१—७७.
५. कारके, अष्टा० १/४/२३.
६. कारके, जै० व्या० १/२/१०६.
७. तु०—जै० व्या० १/२/१२५, अष्टा० १/४/५५.
वही, १/२/११४ वही १/४/४२.
वही, १/२/११६, वही, १/४/४५.
८. कर्मणोपेयः सम्प्रदानम्, जै० व्या० १-२-१११.
९. ध्यपाये ध्रुवमपादानम्, वही, १/२/११०.
१०. द्र०—अष्टा० १/४/३२-३४, ३६, ३७, ३६-४१.
११. द्र०—वही १/४/२८-३१.
१२. धीर्बुद्धिः । प्राप्तिपूर्वको विश्लेषोऽपायः । धिया कृतो अपायो ध्यपायः । धीप्राप्तिपूर्वको विभाग इत्यर्थः । धीग्रहणे ह्यसति कायप्राप्तिपूर्वक एवापायः प्रतीयेत धीग्रहणेन सर्वः प्रतीयते । जै० म० वृ० १/२/११०.
१३. ध्यपाये ध्रुवमपादानम्, जै० व्या० १/२/११०.
१४. दिवः कर्म, वही, १/२/११५.

जैन प्राच्य विद्याएँ

‘नब्बाध्य आसम् (जै० व्या० १/२/६३) सूत्र के आधार पर पुल्लिङ्ग में निर्दिष्ट करण, अधिकरण तथा कर्तृ संज्ञाओं से नपुंसकलिङ्ग में निर्दिष्ट अपादान संज्ञा का बाध होता है। अभयनन्दी की वृत्ति से उपर्युक्त तथ्य सुस्पष्ट है।^१ ‘दिवःकर्म’ (जै० व्या० १/२/११५) सूत्र के अनुसार ‘अक्षान् दीव्यति’ प्रयोग उचित है किन्तु ‘नब्बाध्य आसम्’ सूत्र के आधार पर नपुंसकलिङ्ग में निर्दिष्ट कर्म संज्ञा का पुल्लिङ्ग में निर्दिष्ट करण संज्ञा से बाध होता है तथा अक्षैः दीव्यति प्रयोग की भी प्राप्ति होती है।^२

जैनेन्द्र व्याकरण में दी गई करण कारक की परिभाषा में ‘करण’ शब्द नपुंसकलिङ्ग में निर्दिष्ट है।^३ ऐसी स्थिति में नपुंसक करण संज्ञा का ‘नब्बाध्य आसम्’ सूत्र के आधार पर अनवकाश सम्प्रदान संज्ञा^४ से निश्चय ही बाध होना चाहिए किन्तु अभयनन्दी ने ‘साधकतमं करणम्’ (जै० व्या० १/२/११४) सूत्र की वृत्ति में कहा है—पुल्लिङ्ग निर्देशः किमर्थः ? परिक्रयणमित्यनवकाशया सम्प्रदान-सञ्ज्ञया बाधा मा भूत् ; ‘ध्यपायेध्रुवमपादानम्’ (जै० व्या० १/२/११०) सूत्र की वृत्ति में भी अभयनन्दी ने ‘पुल्लिङ्गया करण-संज्ञया बाधात्’ कहा है। अभयनन्दी के उपर्युक्त कथनों से यह सुस्पष्ट है कि प्रारम्भ में जैनेन्द्र-व्याकरण में ‘साधकतमःकरणः’ सूत्रपाठ था जो कालान्तर में विकृत होकर ‘साधकतमं करणम्’ हो गया। ‘करण’ शब्द के पुल्लिङ्ग में निर्दिष्ट होने पर ही अनवकाश सम्प्रदान संज्ञा से करण-संज्ञा का बाध नहीं होगा तथा ‘शताय परिक्रीतः’ प्रयोग के साथ-साथ ‘शतेन परिक्रीतः’ प्रयोग भी उचित होगा।

समास सूत्र—

पूज्यपाद देवनन्दी ने जैनेन्द्र-व्याकरण के प्रथम अध्याय के तृतीय पाद,^५ चतुर्थ अध्याय के द्वितीय^६ तथा तृतीय पादों^७ में अधिकांश समास सम्बन्धी नियमों को प्रस्तुत किया है। समास-सम्बन्धी अन्य कुछ नियम जैनेन्द्र-व्याकरण के प्रथम अध्याय के द्वितीय पाद,^८ चतुर्थ पाद,^९ चतुर्थ अध्याय के चतुर्थ पाद^{१०} तथा पंचम अध्याय के द्वितीय^{११} तथा चतुर्थ पादों^{१२} में भी उपलब्ध होते हैं।

जैनेन्द्र व्याकरण के समास सूत्रों का आरम्भ ‘समर्थः पदविधिः (जै० व्या० १/३/३१) परिभाषा सूत्र से होता है। अष्टाध्यायी एवं जैनेन्द्र-व्याकरण के अधिकांश समास सूत्रों में पर्याप्त साम्य है किन्तु संक्षेप तथा सरलता के उद्देश्य से जैनेन्द्र-व्याकरण के कुछ समास-सूत्र विशिष्ट हैं।

जैनेन्द्र-व्याकरण की रचना के समय पूज्यपाद देवनन्दी ने संक्षेप की ओर अत्यधिक ध्यान दिया है। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए उन्होंने अन्य सूत्रों के समान समास-सूत्रों में भी लघु-संज्ञाओं का प्रयोग किया है। उदाहरणतः उन्होंने समास के लिए स,^{१३}

१. नपा निर्देशः किमर्थः । वक्ष्यमाणाभिः संज्ञाभिर्बाधा यथा स्यात् । घनुषा विध्यति पुल्लिङ्गया करणसंज्ञया बाधात् । कांस्यपात्रां भुङ्क्ते । पुल्लिङ्गाऽधिकरण संज्ञेव । घनुर्विध्यतीति कर्तृ संज्ञा इहगां दोग्धि पय इति परत्वात्कर्मसंज्ञा । जै० म० वृ० १/२/११०.
२. नपा निर्देशात् करणत्वमपि । वही, १/२/११५.
३. साधकतमं करणम्, जै० व्या० १/२/११४.
४. परिक्रयणम्, वही, १/२/११३.
५. जै० व्या० १/३/१-१०५.
६. वही, ४/२/६५, १३१, १३३-१५६.
७. वही, ४/३/६, १०, ११६, १२०-१७५, १७६-१६६, २०२-२१४, २१५-२२४, २२७, २२८, २३०-२३२, २३४.
८. वही, १/२/१३२-१४८.
९. वही, १/४/७८-१०८, १५१-१५३.
१०. वही, ४/४/१२८, १३०-१३३.
११. वही. ५/२/१२५-१२७.
१२. वही. ५/४/६२-६८, ७२, ७५, ८७-६५, ६७, ११६-११८.
१३. सः, वही, १/३/२.

अव्ययीभाव के लिए है,^१ तत्पुरुष के लिए लिए ष,^२ द्विगु के लिए र,^३ बहुव्रीहि के लिए व,^४ तथा कर्मधारय के लिए य, संज्ञाएँ दी हैं।^५

पूज्यपाद देवनन्दी ने समास सूत्रों की संख्या में भी यथासंभव कमी की है। जो बात स्वभावतः सर्वविदित है उसको कहने की उन्होंने आवश्यकता नहीं समझी है। यही कारण है कि जैनेन्द्र-व्याकरण में एकशेष समास से संबंधित सूत्रों का अभाव है। एकशेष से संबंधित सूत्रों का अभाव होने का कारण भी पूज्यपाद देवनन्दी ने अपने व्याकरण-ग्रन्थ में निर्दिष्ट किया है।^६

सूत्रों में भिन्नता लाने के उद्देश्य से पूज्यपाद देवनन्दी ने अनेक समासान्त पदों का विधान अष्टाध्यायी, कातन्त्र एवं चान्द्र व्याकरण से भिन्न समासान्त प्रत्ययों की सहायता से किया है।

जै० व्या०	अष्टा०	का० व्या० (च० प्र०)	चा० व्या०
१. अ, ४/२/११६.	अप्, ५/४/११६.	अत्, ४१४.	अप्, ४/४/६६.
२. अ, ४/२/११७.	अप्, ५/४/११७.	अत्, ४१५.	अप्, ४/४/१०१.
३. अन्, ४/२/१२५.	अनिच्, ५/४/१२४.	—	अविच्, ४/४/११३.
४. अस्, ४/२/१२४.	असिच्, ५/४/१२२.	—	असिच्, ४/४/१०७.
५. ट, ४/२/१०६.	टच्, ५/४/१०७.	अत्, ३६८.	टच्, ४/४/६०.
६. ट, ४/२/११३.	षच्, ५/४/११३.	अत्, ४१०.	षच्, ४/४/६६.
७. ट, ४/२/११५.	ष, ५/४/११५.	अत्, ४१२.	षच्, ४/४/६८.
८. ड, ४/२/६६.	डच्, ५/४/७३.	अत्, ४२०.	डच्, ४/४/६५.

समासान्त-प्रत्ययों की उपर्युक्त सूची से यह सुस्पष्ट है कि जैनेन्द्र व्याकरण के समासान्त-प्रत्ययों में स्वर-संबंधी अनुबन्धों का अभाव है।

समास सूत्रों के प्रसंग में जिसकी पाणिनि ने प्रथमा विभक्ति से निर्दिष्ट करके उपसर्जन संज्ञा^७ की है उसकी 'पूज्यपाद देवनन्दी ने न्यक् संज्ञा की है।^८

समास सूत्रों में पूज्यपाद देवनन्दी ने अनेक स्थानों पर एक मात्रा के प्रयोग में भी कमी करने का प्रयत्न किया है—

जै० व्या०	अष्टा०	का० व्या०	चा० व्या०
१. आयामिना, १/३/१३.	यस्य चायामः, २/१/१६.	—	अनुः सामीप्यायामयोः, २/२/६.
२. परिणाऽक्षशलाकासंख्याः, १/३/८	अक्षशलाकासंख्याःपरिणा, २/१/१०	—	संख्याक्षशलाकाः परिणा चूतेऽन्यथा वृत्ती, २/२/६.

१. हः, जै० व्या० १/३/४.
२. षम्, वही, १/३/१६.
३. संख्यादी रश्च, वही, १/३/४७.
४. अन्यपदार्थेऽनेकं षम्, वही, १/३/८६.
५. पूर्वकालं कसर्वजस्त्पराणनवकेवलं यश्चैकाश्रये, वही, १/३/४४.
६. स्वाभाविकत्वादभिधानस्यैकशेषानारम्भः, वही, १/१/१००.
७. प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्, अष्टा० १/२/४३.
८. बोधतं न्यक्, जै० व्या०, १/३/६३.

जैन प्राच्य विद्याएँ

३. यत्समयाऽनुः, १/३/१२. अनुयत्समया, २/१/१५ — अनुः सामीप्यायामयोः, २/२/९.
 ४. लक्षणेनाभिमुख्येऽभिप्रती, १/३/११. लक्षणेनाभिप्रती अभिमुख्ये, २/१/१४.— लक्षणेनाभिप्रती २/२/८

अष्टाध्यायी के 'यस्य चायामः' (अष्टा० २/१/१६) एवं चान्द्र-व्याकरण के 'अनुः सामीप्यायामयोः' (चा० व्या० २/२/९) सूत्र के स्थान पर जैनेन्द्र-व्याकरण में समास के उदाहरण की दृष्टि से 'आयामिना' (जै० व्या० १/३/१३) सूत्र की उपस्थिति युक्ति-संगत है।

कुछ समस्त पदों की सिद्धि की विधि में जैनेन्द्र-व्याकरण में, अष्टाध्यायी, कातन्त्र एवं चान्द्र-व्याकरण की अपेक्षा भिन्नता दृष्टिगोचर होती है।

उदाहरणतः—पाणिनि 'एवं चन्द्रगोमी' ने सर्वप्रथम नञ् शब्द का सुबन्त के साथ समास किया है। तत्पश्चात् नञ् के नकार का लोप होकर (न (ञ्) ब्राह्मणः—अब्राह्मणः) अब्राह्मणः रूप सिद्ध हुआ है। शर्ववर्मा ने 'न्' का लोप करके रूपसिद्धि (अ ब्राह्मणः) की है।^१ पूज्यपाद देवनन्दी ने इस समस्त पद की सिद्धि भिन्न विधि से की है। उनके अनुसार 'नञ्' पद का सुबन्त पद के साथ 'समास' होता है तथा यह समास 'नञ् तत्पुरुष' समास कहलाता है (नञ् ब्राह्मणः)।^२ तदुपरान्त उन्होंने 'नञ्' को 'अन्' आदेश किया है।^३ ('अन् ब्राह्मण') तथा 'अन्' के नकार का लोप विधान करते हुए (अ ब्राह्मणः) उपर्युक्त पद की सिद्धि की है।^४

पाणिनि^५ तथा चन्द्रगोमी^६ ने अजादि पद परे रहते 'नञ्' के 'न्' का लोप करके (अ अश्वः) तथा अजादि पद के आदि अच् से पूर्व नुडागम लगाकर (अ+नुट्+अश्वः) 'अनश्वः' समस्त पद की सिद्धि की है। शर्ववर्मा ने अक्षर विपर्यय (न् अ. अश्वः अन्-अश्वः) करके 'अनश्वः' शब्द की सिद्धि की है।^७ पूज्यपाद देवनन्दी ने 'नुट्' आगम का 'प्रयोग' नहीं किया है। उन्होंने अजादि उत्तरपद परे रहते हुए 'नञ्' को 'अन्' आदेश का ही विधान किया है (नञ् अन्तः अन् अन्तः)।^८ यहाँ 'अन्' आदेश का पुनः निर्देश 'अन्' के नलोप की निवृत्ति के लिए ही किया गया है।^९ अतः 'अनन्तः' समस्त पद का निर्माण हुआ है।

उपर्युक्त भिन्न विधि के फलस्वरूप जैनेन्द्र-व्याकरण में 'नञोऽन्' (जै० व्या० ४/३/१८१) एवं अचि (जै० व्या० ४/३/१८२) सूत्र नवीन प्रतीत होते हैं।

तिङन्त सूत्र—

जैनेन्द्र-व्याकरण के प्रथम अध्याय के द्वितीय^{१०} एवं चतुर्थ पाद^{११}, द्वितीय अध्याय के प्रथम^{१२}, तृतीय^{१३} एवं चतुर्थ पाद^{१४} तथा चतुर्थ

१. नञ्, नलोपो नञः ; अष्टा० २/२/६; ६/३/७३.
२. नञ् ; नञो नः, चा० व्या २/२/२०; ५/२/९१.
३. नस्य तत्पुरुषे लोप्यः, का० व्या०, च० प्र० २८०.
४. नञ्, जै० व्या० १/३/६८.
५. नञोऽन्, वही, ४/३/१८१.
६. नखं मृदन्तस्याको, वही ५/३/३०.
७. नलोपो नञः ; तस्मान्नुडचि ; अष्टा० ६/३/७३, ६/३/७४.
८. नञो नः ; ततोऽचि नुट् ; चा० व्या० ५/२/९१ ; ५/२/९३.
९. स्वरेऽक्षरविपर्ययः, का० व्या०, च० प्र० २८१.
१०. अचि, जै० व्या०, ४/३/१८२.
११. पुनर्वचन नरवनिवृत्त्यर्थम्, जै० म० वृ० ४/३/१८२.
१२. जै० व्या० १/२/६-८६, १४६-१५५.
१३. वही, १/४/१०६-१२६, १४२-१५०, १५४.
१४. वही, २/१/१-७८।
१५. वही, २/३/१-७, १०७-१५२.
१६. वही, २/४/१-३, ५४, ६३-६६.

अध्याय के तृतीय^१ एवं चतुर्थ पाद^२ तथा पंचम अध्याय के प्रथम^३, द्वितीय^४ तथा चतुर्थ पादों^५ में अधिकांश तिङन्त संबंधी नियम उपलब्ध होते हैं। इनके अतिरिक्त प्रथम अध्याय के प्रथम पाद,^६ द्वितीय अध्याय के द्वितीय पाद^७ तथा पंचम अध्याय के तृतीय पाद^८ में भी कतिपय तिङन्त संबंधी नियम प्रस्तुत किए गए हैं।

क्रियापदों के निर्माण में पूज्यपाद देवनन्दी ने अधिकतर स्थलों पर पाणिनि का ही अनुकरण करते हुए कहीं-कहीं पर मौलिकता लाने का प्रयास किया है।

अष्टाध्यायी^९ एवं चान्द्र-व्याकरण^{१०} में 'लट्' आदि लकारों के स्थान पर तिप् तस् भि, सिप् तस् थ, आदि आदेशों का विधान किया गया है। कातन्त्र-व्याकरण में उपर्युक्त प्रत्ययों का सूत्र में उल्लेख नहीं किया गया है, किन्तु दुर्गासिंह ने वृत्ति में उन प्रत्ययों का निर्देश किया है।^{११}

जैनेन्द्र-व्याकरण में अष्टाध्यायी में निर्दिष्ट तिप्, तस्, झि इत्यादि प्रत्ययों का ही परिगणन किया गया है, किन्तु क्रम बिल्कुल विपरीत है। सूत्र में उत्तमपुरुष, मध्यमपुरुष तथा प्रथमपुरुष के प्रत्ययों का क्रमशः समावेश किया गया है।^{१२}

भारतीय व्याकरण साहित्य में उपरिनिर्दिष्ट प्रत्ययों को इस क्रम से अन्य किसी व्याकरण ने प्रस्तुत नहीं किया है। प्रत्ययों के इसी क्रम के परिणामस्वरूप पाणिनि के द्वारा निर्दिष्ट तिङ् प्रत्याहार के स्थान पर जैनेन्द्र व्याकरण में मिङ् प्रत्याहार का प्रयोग उपलब्ध होता है।^{१३} मिङ् प्रत्याहार बनाने के उद्देश्य से पाणिनि द्वारा निर्दिष्ट महिङ् प्रत्यय के 'ङ्' को पूज्यपाद देवनन्दी ने अन्तिम प्रत्यय 'झ' के साथ युक्त किया है।

पूज्यपाद देवनन्दी ने परस्मैपद का म^{१४} तथा आत्मनेपद का द^{१५} संज्ञा से निर्देश किया है। उपर्युक्त १८ प्रत्ययों में से प्रथम ६ प्रत्यय म संज्ञक तथा अन्तिम ६ प्रत्यय द संज्ञक हैं। उन्होंने आत्मनेपद तथा परस्मैपद के प्रत्येक वर्ग के नौ प्रत्ययों को अस्मद् युष्मद् तथा अन्य संज्ञाएँ दी हैं^{१६} तथा उन प्रत्ययों का एकवचन, द्विवचन एवं बहुवचन की दृष्टि से विभाजन किया है।^{१७}

जैनेन्द्र व्याकरण में पारम्परिक नौ लकारों का उल्लेख मिलता है। ये नौ लकार हैं—लट्, लिट्, लुट्, लृट्, लोट्, लिङ्, लिङ्, लुङ् एवं लृङ्। वैदिक शब्दों से सम्बद्ध नियमों का अभाव होने के कारण लेट् लकार का यहाँ सर्वथा अभाव है।

१. वही, ४/३/१-५४. ११०-११७.

२. वही ४/४/२, १३-७१, ७३, ७६, ७७, ८१-११७.

३. जै० व्या० ५/१/३-७, ३०, ३२, ३३, ३८-४३, ४८, ७४-७६, ७८-१४०.

४. वही, ५/२/३६-४६, ५६-६३, ६६-६६, ११५-१४६, १५१-१६४.

५. वही, ५/४/४०-६१, ६८, ७८-८४, ८८-१०७.

६. वही, १/१/७५-६७.

७. वही, २/२/६१-१०१.

८. वही, ५/३/३६-३६, ४३-४५, ५२, ५५, ५६, ८०-८२, ८७.

९. तिप्तस्मिप्थस्थमिप्थस्मस्ताताम्भ यासाथाम्भमिड्वहिमहिङ्, अष्टा० ३/४/७८.

१०. लस्तिप्तस्मिप्थस्थमिप्थस्मस्तातां भयासाथांठवमिट् वहिमहिङ्, चा० व्या० १/४/१.

११. का० व्या०, आख्यात प्रकरण २४-३३ (दुर्गासिंह कृत) वृ०, सम्पा० गुहनाथ त्रिद्यानिधि भट्टाचार्य, कन्नकता, शकाब्द, १८५५.

१२. मिप्थस्मस्मिप्थस्थमिप्थस्मिड्वहिमहिथासाथां ठवंतातांभङ्, जै० व्या० २/४/६४.

१३. मिङ् शिद्गः, वही. २/४/६३.

१४. लो भम्. वही, १/२/१५०.

१५. इडानं दः, वही, १/२/१५१.

१६. मिङ्स्त्रिणोऽस्मद्युष्मदन्याः. वही, १/२/१५२.

१७. एकद्विबहवचनैकशः. वही, १/२/१५५.

जैन प्राच्य विद्याएँ

१५७

जैनेन्द्र व्याकरण में धातुओं को दस गणों में विभक्त किया गया है। वे गण तथा उनके विकरण इस प्रकार हैं—

गण	जै० व्या०	अष्टा०	का० व्या० (भा० प्र०)	चा० व्या०
१. भ्वादिगण	शप् २/१/६४	शप्, ३/१/६८	अन्, ६६	शप्, १/१/८२
२. ह्वादिगण	उज्, १/४/१४५.	श्लु २/४/७५.	अन्, ६६.	लुक्, १/१/८४
३. अदादिगण	उप्, १/४/१४३.	लुक्, २/४/७२.	—	लुक् १/१/८३.
४. दिवादिगण	श्य, २/१/६५.	श्यन्, ३/१/६६.	यन्, ६७.	श्यन्, १/१/८७
५. स्वादिगण	शन् २/१/६६.	शन्, ३/१/७३.	नु, ६८.	शन्, १/१/६५.
६. तुदादिगण	श, २/१/७३.	श, ३/१/७७	अन्, ६६.	श, १/१/६२
७. रुधादिगण	शनम्, २/१/७३.	शनम्, ३/१/७८.	न, ७०.	शनम् १/१/६२
८. तनादिगण	उ, २/१/७४.	उ, ३/१/७६	उ, ७१.	उ, १,१,६४.
९. क्रयादिगण	शना, २/१/७६	शना, ३/१/८१	ना, ७२.	शना, १/१/१०१
१०. चुरादिगण	णिच्, २/१/२२.	णिच्, ३/१/२५.	इन्, ४५.	णिच्, १/१/४५

इस प्रकार अष्टाध्यायी में प्रयुक्त 'श्लु' एवं लुक् विकरणों के स्थान पर जैनेन्द्र व्याकरण में 'उज्' एवं 'उप्' विकरणों का प्रयोग किया गया है। उदात्तादि नियमों का अभाव होने के कारण अष्टाध्यायी के 'श्यन्' विकरण के स्थान पर जैनेन्द्र व्याकरण में 'श्य' विकरण का प्रयोग किया गया है।

पूज्यपाद देवनन्दी ने तिङन्त संबंधी नियमों को प्रस्तुत करते हुए प्रायः सर्वत्र ही पाणिनि का अनुकरण किया है। केवल एक-दो स्थलों पर मौलिकता लाने का प्रयास किया है। लुङ् लकार के प्रसंग में उन्होंने पाणिनि द्वारा निर्दिष्ट च्लि आगम का निर्देश नहीं किया है। पाणिनि ने सर्वप्रथम लुङ् परे रहते धातु से च्लि आगम का विधान किया है।^१ तत्पश्चात् च्लि को सिच् आदेश किया है।^२ शर्ववर्म^३ की भाँति पूज्यपाद देवनन्दी ने भी लुङ् परे रहते धातु से च्लि का आगम तथा च्लि को 'सिच्' आदेश न करके मौलिकता एवं संक्षिप्तता की दृष्टि से धातु से सि आगम का ही विधान किया है।^४

इसी प्रकार पाणिनि ने कर्तृवाची लुङ् परे रहते ष्यन्त धातुओं तथा श्रि, द्रु एवं स्तु धातुओं से परे च्लि आगम को चङ् आदेश का विधान किया है तथा अचीकरत्, अशिश्नियत्, अदुद्रवत् एवं असुसुवत् क्रियारूपों की सिद्धि की है।^५ इसी लुङ् लकार के प्रसंग में पाणिनि ने √ पद् धातु से लुङ् लकार के त प्रत्यय के परे रहते लुङ् लकार में 'च्लि' आगम को 'चिण्' आदेश का विधान किया है।^६ चन्द्रगोमी ने भी कर्तृवाची लुङ् परे रहते उपयुक्त धातुओं से चङ् आगम का विधान किया है^७ तथा √ पद् धातु से लुङ् लकार में त प्रत्यय परे रहते 'चिण्' आगम का विधान किया है।^८ शर्ववर्मा ने उपयुक्त दोनों आगमों के स्थान पर क्रमशः 'चण्' एवं 'इच्' आगमों का विधान किया है।^९ पूज्यपाद देवनन्दी ने सूत्रों में मौलिकता लाने के उद्देश्य से उपयुक्त रूपों की सिद्धि के लिए क्रमशः 'कच्' एवं 'जि' आगमों का विधान किया है।^{१०}

१. च्लि लुङि, अष्टा० ३/१/४३.

२. च्ले: सिच्, अष्टा० ३/१/४४.

३. सिजद्यतन्याम्, का० व्या०, भा० प्र० ५८.

४. सिलुङि., जै० व्या० २/१/३८.

५. णिश्रिद्रुस्त्वुभ्यः कर्त्तरि चङ् अष्टा० ३/१/४८.

६. चिण् ते पदः, वही, ३/१/६०.

७. णिश्रिद्रुस्त्वुकमः कर्त्तरि चङ्, चा० व्या० १/१/६८.

८. चिण् ते पदः, वही, १/१/७६.

९. श्रिद्रुस्त्वुकमिकारिताप्तेभ्यश्चण् कर्त्तरि; इजात्मने पदे: प्रथमेकवचने; का० व्या०, भा० प्र० ६०; ६३.

१०. णिश्रिद्रुस्त्वुकमे: कर्त्तरि कच्; द्विस्ते पदः; जै० व्या० २/१/४३; २/१/५१.

नामधातुओं की रचना में पूज्यपाद देवनन्दी ने क्यच्^१ काम्य^२, क्यङ्^३ क्यष्^४, णिङ्^५ एवं णिच्^६ प्रत्ययों का प्रयोग किया है। नामधातुओं के प्रसंग में पाणिनि^७ तथा चन्द्रगोमी^८ ने क्षीर एवं लवण शब्दों से क्यच् प्रत्यय परे रहते असुक् आगम का विधान किया है तथा पररूप सन्धि करके क्षीरस्यति एवं लवणस्यति रूपों की सिद्धि की है। पूज्यपाद देवनन्दी ने उपर्युक्त शब्दों से क्यच् परे रहते 'सुक्' आगम का विधान किया है।^९ जिसके परिणामस्वरूप पररूप सन्धि करने की आवश्यकता नहीं पड़ती।

कृत-सूत्र

पूज्यपाद देवनन्दी ने जैनेन्द्र व्याकरण के द्वितीय अध्याय के अधिकांश सूत्रों में^{१०} कृत् प्रत्ययों का उल्लेख किया है। जैनेन्द्र व्याकरण के प्रथम अध्याय के प्रथम^{११} तथा चतुर्थे पाद^{१२} चतुर्थ अध्याय के तृतीय^{१३} एवं चतुर्थे पाद^{१४}, तथा पंचम अध्याय के प्रथम^{१५} द्वितीय^{१६}, तृतीय^{१७}, तथा चतुर्थे^{१८} पादों के कतिपय सूत्रों में भी कृत् संबंधी नियम उपलब्ध होते हैं।

पाणिनि ने तिङ् प्रत्ययों से भिन्न प्रत्ययों की कृत् संज्ञा की है।^{१९} पूज्यपाद देवनन्दी ने लकारों के स्थान पर आने वाले तिप् तस्, फि...इत्यादि आदेशों को अष्टाध्यायी की अपेक्षा विपरीत क्रम से रखा है।^{२०} तथा यही कारण है कि जैनेन्द्र व्याकरण में 'तिङ्' प्रत्याहार के स्थान पर 'मिङ्' प्रत्याहार का प्रयोग किया गया है।^{२१} इसी के परिणामस्वरूप पूज्यपाद देवनन्दी ने मिङ् प्रत्ययों से भिन्न प्रत्ययों की कृत्संज्ञा की है।^{२२}

अष्टाध्यायी में निर्दिष्ट 'कृत्य'^{२३} प्रत्ययों की जैनेन्द्र व्याकरण में 'व्य'^{२४} संज्ञा की गई है। जैनेन्द्र-व्याकरण में निर्दिष्ट अनेक कृत्प्रत्ययों का (कुछ प्रत्ययों के अतिरिक्त) अष्टाध्यायी के कृत्प्रत्ययों से पूर्ण साम्य है। जैनेन्द्र व्याकरण के कुछ कृत् प्रत्यय अष्टाध्यायी,

१. स्वेपः क्यच्, जै० व्या० २/१/६.
२. काम्यः, वही २/१/७.
३. कत्तुः क्यङ् सखं विभाषा, वही २/१/९.
४. डाज्जलोहितत् क्यष्, वही २/१/११.
५. पुच्छभाण्डचीवराण्णिङ्, वही २/१/१७.
६. मृण्डमिश्रश्लक्ष्णलवणव्रतवस्त्रहलकलकृततूस्तेभ्यो णिच्, वही, २/१/१८.
७. अश्वक्षीर वृषलवणानामात्मप्रीतौ क्यचि; अतो गुणे, अष्टा० ७/१/५१; ६/१/९७.
८. असुक् चात्तुम्; अतोऽदेङि; चा० व्या० ६/२/९१; ५/१/१०१.
९. क्षीरलवणयोर्लोत्ये, जै० व्या० ५/१/३३.
१०. वही, २/१/८०-१२३; २/२/१-६१, ६१, ६३-९०; १०२-१६६, २/३/८-१०६, १३४, १३९. १४३, १४५-१४८, १५०, २/४/४-६१.
११. वही, १/१/८०, ८१, ९२-९७.
१२. वही, १/४/११०, १११, १२९.
१३. वही, ४/३/१७-२५, ३४-३७, ४०, ४३-४५, ५९, १७६-१७८, २२५.
१४. वही, ४/४/१६, २७, २८, ३०, ३१, ३८-४१, ४७, ५४, ५६-६०, ६४, ६८, ६९, ८७-९२.
१५. जै० व्या ५/१/३१, ४४-४७, ९५, ९८-१०४, ११६, ११७, १२०, १२२, १२४-१२८, १४१, १४२.
१६. वही, ५/२/५६, ५८, ६४-६८, १४४-१४९, १८६.
१७. वही, ५/३/४०, ५९-७४.
१८. वही. ५/४/५७, ७०, ७१, ७५, ८०, १०८-११४.
१९. कृदतिङ्, अष्टा० ३/१/९३.
२०. निपवस्मस्सिष्यस्थतिपत्सुभोड् वहिमहि धासायां ध्वंतातां ऋङ् । जै० व्या० २/४/६४.
२१. भिङ्गिद्गः वही, २/४/९३.
२२. कृदमिङ्, वही, २/१/८०.
२३. कृत्या; प्राङ्-ध्वलः, अष्टा० ३/१/९५.
२४. ण्वोव्याः, जै० व्या० २/१/८२.

कातन्त्र व्याकरण एवं चान्द्र व्याकरण में उपलब्ध कृतप्रत्ययों से स्वरूप की दृष्टि से भिन्न है। निम्नलिखित तालिका से यह सुस्पष्ट है—

जै० व्या०	अष्टा०	का० व्या० (कृ० प्र०)	चा० व्या०
१. अ, २/२/१४.	अच्, ३/२/६.	अच्, १६१.	अच्, १/२/३ वृ०
२. अच्, २/३/५२.	अप्, ३/२/५८.	अल्, ३५८.	अप्, १/३/४८,
३. अत्, २/२/८७.	अतृन्, ३/२/१०४.	अन्तृन्, २४५.	अतृन्, १/२/७२.
४. इष्णु, २/२/११४.	इष्णुच्, ३/२/१३६.	इष्णुच्, २६१.	इष्णुच्, १/२/६०.
५. कमर, २/२/१४३.	कमरच् ३/२/१६०.	मरक्, २८५.	कमरच्, १/२/१०६.
६. क्लुक, ऋक, २/२/१५३.	क्लुकन्, ऋकन् ३/२/१७४, ३/२/१७४. वा०	रुक, लुक ३०१.	ऋ, कन्, १/२ १२१.
७. क्वि, २/२/५६.	क्विन्, ३/२/५८.	क्विप्, २२०.	क्विन्, १/२/४८.
८. ख, २/३/१०४.	खल्, ३/३/१२६.	खल्, ४१६.	खल्, १/३/१०३.
९. ज्ञ, २/३/७६.	णच्, ३/३/४३.	णच्, ३५७.	णच्, १/३/७६
१०. ज्जिन्, २/३/६६	इनुण्, ३/३/४४.	इनुण्, ३५६.	इनुण्, १/३/७३.
११. टाक, २/२/१३८.	षाकन्, ३/२/१५५.	षाक, २८०.	षाकन्, १/२/१०३
१२. ट्वु, २/१/११६.	ष्वुन ३/१/१४५.	वुष्, १४५.	ष्वुन्, १/१/१५७.
१३. ण्य, २/१/१०२	ण्यत्, ३/१/१२५.	ध्यण्, १२१.	ण्यत्, १/१/१३२.
१४. ण्यु, थक, २/१/१२०.	थकन्, ण्युट् ३/१/१४६, १४७	थक, ण्युट्, १४६, १४७,	थकन् ण्युट् १/१/१५४ १५५,
१५. ण्वु, २/१/१०६.	ण्वुल्, ३/१/१३३.	पुण्, १३१	ण्वुल्, १/१/१३६
१६. ञ, ४/४/६२.	ञन्, ६/४/६७.	ञन्, १६.	ञन्, ६/१/६०.
१७. ञट्, २/२/१६०.	ष्टृन्, ३/२/१८२.	ष्टृन्, ३०६.	—
१८. प्य, ५/१/३१.	ल्यप्, ७/१/३७.	यप्, ४८५.	ल्यप्, ५/४/६.
१९. वन्, २/२/६२.	वनिप्, ३/२/७४.	वनिप्, २१६.	वनिप् १/२/५१.
२०. वनिप्, २/२/८६.	ङ्वनिप्, ३/२/१०३.	ङ्वनिप् २४४.	क्वनिप् वनिप् १/२/७१. वृ०
२१. वसु, २/२/८८.	क्वसु- ३/२/१०८.	क्वंसु, २४६.	क्वसु, १/२/७४.
२२. वुण्, २/३/६०.	ण्वुल् ३/३/१०६.	वुञ्, ४०५.	ण्वुच्, १/३/६१
२३. वुण् २/३/६२.	ण्वुच्, ३/३/१११.	पुञ्, ४०६.	ण्वुच्, १/३/६१.
२४. शान, २/२/१०२	शानच्, ३/२/१२४.	आनश्, २४७.	—
२५. शान, २/२/१०६.	शानन्, ३/२/१२८.	शानङ्, २५३.	शानच्, १/२/८६
२६. शान, २/२/१०७.	चानश्, ३/२/१२/६.	शानङ्, २५४.	शानच्, १/२/८७:
२७. स्नुख, २/२/५४.	खिष्णुच्, ३/२/५७.	खिष्णु, २०८.	खिष्णुच्, १/२/४६.

कृतप्रत्ययों की उपर्युक्त तुलनात्मक सूची से सुस्पष्ट है कि पूज्यपाद देवनाम्बी ने पाणिनि के द्वारा उदात्तादि स्वरों की दृष्टि से निर्दिष्ट अनुबन्धों का सर्वत्र निराकरण किया है। यही कारण है कि जैनेन्द्र व्याकरण के कुछ कृतप्रत्यय अष्टाध्यायी में निर्दिष्ट कृतप्रत्ययों की अपेक्षा स्वरूप की दृष्टि से भिन्न हैं। अष्टाध्यायी में प्रत्ययों के अनुबन्धों का स्वरादि की दृष्टि से अत्यन्त महत्त्व है। उदाहरण के लिए अष्टाध्यायी का 'ण्यत्' कृत प्रत्यय तित् होने के कारण स्वरित है^१ तथा 'खल्'^२ प्रत्यय के लित् होने के कारण उससे

१. ऋहलोर्ण्यत्, अष्टा० ३/१/१२४.

२. तित् स्वरितम्, वही, ६/१/१८५.

३. ईषद्दुःसुप् कृच्छ्राकृच्छ्राथेषु खन्, वही, ३/३/११६.

पूर्ववर्ती वर्ण उदात्त होता है।^१ जैनेन्द्र व्याकरण में उदात्तादि संबंधी अनुबन्धों की आवश्यकता न होने के कारण उपरिनिर्दिष्ट 'प्यत्' एवं 'खल्' प्रत्ययों के स्थान पर क्रमशः 'प्य' एवं 'ख' प्रत्ययों का ही निर्देश किया गया है। जैनेन्द्र-व्याकरण में उदात्तादि संबंधी अनुबन्धों के निराकरण से कृत्प्रत्ययों की संख्या में पर्याप्त कमी हुई है। उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि अष्टाध्यायी के शानच्, शानन् एवं चानश् कृत्प्रत्ययों के स्थान पर जैनेन्द्र व्याकरण में शान प्रत्यय का प्रयोग किया गया है। अष्टाध्यायी के ष्वल् एवं ष्वच् प्रत्ययों के स्थान पर जैनेन्द्र व्याकरण में 'वुण्' प्रत्यय निर्दिष्ट है। इस प्रकार पाणिनि ने जिन शब्दों की सिद्धि भिन्न भिन्न प्रत्ययों के योग से की है उनकी सिद्धि के लिए पूज्यपाद देवनन्दी ने एक ही प्रत्यय का निर्देश किया है। उदाहरण के लिए पाणिनि ने 'पचमानः' की सिद्धि शानच्,^२ पचमानः एवं यजमानः की सिद्धि शानन् तथा भुञ्जानः (भोगं भुञ्जानः) एवं विभ्राणः (कवचः विभ्राणः) की सिद्धि चानश् प्रत्यय के योग से की है।^३ किन्तु पूज्यपाद देवनन्दी ने उपर्युक्त शब्दरूपों को सिद्धि केवल एक ही प्रत्यय 'शान' के योग से की है।^४

एक ही शब्द की सिद्धि के हेतु अष्टाध्यायी, कातन्त्र व्याकरण, चान्द्र व्याकरण एवं जैनेन्द्र व्याकरण में भिन्न-भिन्न प्रत्ययों का प्रयोग किया गया है। किन्तु सभी व्याकरण-ग्रन्थों में शब्दरूप समान ही निष्पन्न हुआ है। उदाहरण के लिए—

१. जल्पाकः, भिक्षाकः, कुट्टाकः प्रभृति कृदन्त रूपों की सिद्धि में पाणिनि^५ एवं चन्द्रगोमी^६ ने 'षाकन्' प्रत्यय का प्रयोग किया है। कातन्त्र व्याकरण में षाक प्रत्यय का प्रयोग किया गया है।^७ जबकि पूज्यपाद देवनन्दी ने उपर्युक्त शब्दों की सिद्धि 'टाक' प्रत्यय के योग से की है।^८
२. नर्तकः, खनकः, रजकः प्रभृति कृदन्त रूपों की सिद्धि पाणिनि^९ एवं चन्द्रगोमी^{१०} ने 'वुण्' प्रत्यय के योग से की है। कातन्त्र-व्याकरण में उपर्युक्त रूपों की सिद्धि 'वुष्' प्रत्यय के योग से की गई है।^{११} पूज्यपाद देवनन्दी ने उपर्युक्त शब्दों को ट्व् प्रत्यय के योग से सिद्ध किया है।^{१२}
३. इसी प्रकार दात्रम्, नेत्रम्, शस्त्रम् आदि कृदन्त शब्दों की सिद्धि में अष्टाध्यायी^{१३} एवं कातन्त्र व्याकरण^{१४} में 'ष्ट्रन्' कृत्प्रत्यय का प्रयोग किया गया है। चन्द्रगोमी ने (ष्ट्रन् उणादि प्रत्ययान्त) उपर्युक्त शब्दों का वृत्ति में निर्देश किया है।^{१५} जबकि पूज्यपाद देवनन्दी ने उपर्युक्त शब्दों को 'त्रट्' प्रत्यय के योग से निष्पन्न किया है।^{१६}

१. लिति, वही, ६/१/१६३.
२. प्यः, जै० व्या० २/१/१०१.
३. स्वीषद्दुसि कृच्छाकृच्छे खः, वही, २/३/१०४.
४. लटः शत् शानचावप्रथमासमानाधिकरणे, अष्टा० ३/२/१२४.
५. पूङ् यजोः शानन्, वही, ३/२/१२८.
६. ताच्छील्यवयोवचनशक्तिषु चानश्, वही, ३/२/१२६.
७. तस्य शत्शानावबैकार्ये; पूङ् यजोः शानः, वयः शक्तिशीले; जै० व्या० २/२/१०२; २/२/१०६; २/२/१०७.
८. जल्प-भिक्षकुट्टलुण्टवृङ्कः षाकन्, अष्टा० ३/२/१५५.
९. जल्प भिक्षकुट्टलुण्टवृङ्कः षाकन्, चा० व्या० १/२/१०३.
१०. वृङ् भिक्षि लृण्टि-जल्पि कुट्टां षाकः, का० व्या०, कृत् प्रकरण २८०, सम्पा० गुरुनाथ विद्यानिधि भट्टाचार्य, कलकत्ता, बह्मशाब्द, १३४४.
११. जल्पभिक्षकुट्टलुण्टवृङ्कटाकः, जै० व्या० २/२/१३८.
१२. शिल्पिनि वुण्, अष्टा० ३/१/१४५.
१३. नृत्तिनिरजः शिल्पिनि वुण्, चा० व्या० १/१/१५७.
नि वुष्, का० व्या०, कृ० प्र० १४५.
१४. शिल्पिनि ट्व्, जै० व्या० २/१/११६.
१५. दान्नीशसयुजस्तु तुदसिसिच मिहपतदश नहः करणे, अष्टा० ३/२/१८२.
१६. नो दाप्-शस्-यु-युज-स्तु-तुद-सि-सिच मिह-पत दन्श-नहां करणे, का० व्या०, कृ० प्र० ३०६.
१७. चा० वृ० १/२/१२३.
१८. दान्नीशसयुज स्तुतुदसिसिचमिहपतदशनहः करणे लट्, जै० व्या० २/२/१६०.

जैन प्राच्य विद्याएं

१६१

४. व्यावलेखी, व्यावहारी प्रभृति कृदन्त शब्दों की सिद्धि अष्टाध्यायी^१, कातन्त्र व्याकरण^२ एवं चान्द्र व्याकरण^३ में णच् प्रत्यय के योग से की गई है। पूज्यपाद देवनन्दी ने उपर्युक्त रूपों की सिद्धि 'ञ' प्रत्यय द्वारा की है।^४

अष्टाध्यायी^५ एवं कातन्त्र व्याकरण^६ में 'णम्' (णमुल्) प्रत्ययान्त रक्षपेषं शब्द की सिद्धि की गई है। चान्द्रवृत्ति में भी 'रक्षपेषम्' शब्द निर्दिष्ट है।^७ पूज्यपाद देवनन्दी ने 'रक्षपेषं' शब्द का निर्देश न करके उसके स्थान पर (णम् प्रत्ययान्त) भक्षपेषं शब्द की सिद्धि की है।^८ सम्भव है कि पूज्यपाद देवनन्दी के समय में उक्त शब्द भाषा में प्रयुक्त होता था।

हृत् (तद्धित) सूत्र

अन्य सूत्रों की अपेक्षा जैनेन्द्र-व्याकरण में तद्धित से संबंधित सूत्रों की संख्या अधिक है। पूज्यपाद देवनन्दी ने जैनेन्द्र-व्याकरण के ३/१/६३ सूत्र से लेकर सम्पूर्ण तृतीय अध्याय, चतुर्थ अध्याय के सम्पूर्ण प्रथम पाद एवं द्वितीय पाद के ६४वें सूत्र तक तद्धित से संबंधित नियमों को प्रस्तुत किया है। तद्धित संबंधी अन्य कुछ नियम जैनेन्द्र-व्याकरण के प्रथम अध्याय के चतुर्थ पाद^९, चतुर्थ अध्याय के चतुर्थ पाद^{१०}, पंचम अध्याय के द्वितीय^{११} तथा तृतीय पादों^{१२} के कुछ सूत्रों में निर्दिष्ट हैं।

'तद्धित' के लिए जैनेन्द्र-व्याकरण में 'हृत्' संज्ञा का प्रयोग किया गया है।^{१३} जैनेन्द्र-व्याकरण के तद्धित प्रत्यय अष्टाध्यायी, कातन्त्र एवं चान्द्र-व्याकरण के तद्धित प्रत्ययों से अनुबन्ध की दृष्टि से भिन्न हैं। नीचे दी गई प्रत्यय-सूची से यह स्पष्ट है—

जै० व्या०	अष्टा०	का० व्या०	चा० व्या०
१. अ, ४/१/५०.	अच्, ५/२/१२७	—	अच्, ४/२/१४७
२. अ, ४/१/७८	अत्, ५/३/१२	—	—
३. अ, ३/३/८.	अल्, ४/३/३४ वा०	—	—
४. अक, ४/१/१३०.	अकच्, ५/३/७१.	—	अकच्, ४/३/६०
५. अञ्, नुगागम, ३/१/७२.	नञ्, स्नञ् ४/१/८७.	—	नञ्, स्नञ् २/४/१३.
६. अड, वृ, ४/१/१३६.	अडच्, वृच्, ५/३/८०	—	ड, अकच् ४/३/६५
७. अण्, ३/२/८५.	अञ्, ४/२/१०८.	—	ञ, ३/२/१६
८. अण्, ञ, ४/२/२२.	णच्, अञ्, ५/४/१४	—	णच्, अण्, ४/४/२१.
९. अतस्, ४/१/६४.	अतसुच्, ५/३/२८	—	तस्, ४/३/३८.
१०. अस्तात्, ४/१/६२.	अस्तात्, ५/३/२७.	—	अस्तात्, ४/३/२८.
११. आकिन्, ४/१/११३.	आकिनिच्, ५/३/५२.	—	आकिनिच्, ४/२/६७.
१२. आल, आट ४/१/४६.	आलच्, आटच्, ५/२/१२५	—	आलच्, आटच् ४/२/१४६.
१३. इत्, ३/४/१५७	इत्च्, ५/२/३६	—	इत्च्, ४/२/३७.

- कर्मव्यतिहारे णच् स्त्रियाम्, अष्टा० ३/३/४३.
- कर्मव्यतिहारे णच् स्त्रियाम्, का० व्या०, कृ० प्र० ३५७.
- व्यतिहारे णच्, चा० व्या० १/३/७६.
- कर्मव्यतिहारे ञः, जै० व्या० २/३/७६.
- शुक्लचूर्णरक्षेषु पिपः, अष्टा० ३/४/३५.
- शुक्लचूर्णरक्षेषु पिपः, का० व्या०, कृ० प्र० ४४७.
- चा० वृ० १/३/१३५.
- शुक्लचूर्णमक्षेषु पिपः, जै० व्या० २/४/२०.
- वही, १/४/१३०-१४१.
- जै० व्या०, ४/४/१२३, १३०-१३५, १४१-१६६.
- वही, ५/२/५-३५, ५४, ५५.
- वही, ५/३/१-१३, ३१-३५.
- हृत्ः, वही, ३/१/६१.

क्र० व्या०	अष्टा	का० व्या०	वा० व्या०
१४. इन्- कट्य, ३/२/४४	इनि, कट्यच्, ४/२/५१	—	इनि, ३/१/५७
१५. इन्, कण्, ३/२/६०.	इनि, कक्, ४/२/८०	—	इनि, कक्, ३/१/६८.
१६. इन्, पिट, ३/४/१५३-१५४.	इन्च् पिटच्, ५/२/३३.	—	—
१७. इम, ३/३/१४३,	मप्, ४/४/२०	—	इमप्, ३/४/२०.
१८. इमन्, ३/४/११२.	इमनिच्, ५/१/१२२	—	इमनिच्, ४/१/१३६
१९. इल, ४/१/२६	इलच्, ५/२/६६.	—	इलच्, ४/२/१०३.
२०. ईर, ४/१/३७.	ईरन्, ईरच्, ५/२/१११.	—	ईरच्, ४/२/११५.
२१. एन, ४/१/६६	एनप्, ५/३/३५	—	एनप्, ४/३/४१.
२२. क, ३/२/१०६	कन्, ४/२/१३१	—	कन्, ३/२/४६.
२३. क, ३/३/५.	वुन्, ४/३/२८.	—	कन् ३/३/२.
२४. कट्, ३/४/७१.	ष्कन्, ५/१/७५.	—	ष्कन्, ४/१/८७.
२५. कट, ३/४/१४६.	कटच्, ५/२/२६	—	कटच्, ४/२/३०.
२६. कण्. ३/३/१४६.	कक्, कन्, ४/४/२१.	—	कक्, कन्, ३/४/२१.
२७. कप्, ३/४/३०	ईकन्, ५/१/३३.	—	ईकन्, ४/१/१४२.
२८. कुटार, ३/४/१५०	कुटारच्, ५/२/३०.	—	कुटारच्, ४/२/३१.
२९. कुण, जाह, ३/४/१४४	कुणप्, जाहच्, ५/२/२४.	—	कुणप्, जाहच्, ४/२/२४
३०. गिमन्, ४/१/४८.	गिमनि, ५/२/१२४	—	गिमनि, ४/२/१४५.
३१. घ, ३/२/२१	घन्, ४/२/२६.	—	घन्, ३/१/२३.
३२. चुञ्चु, चण, ३/४/१४६.	चुञ्चुप्, चणप्, ५/२/२६.	—	चुञ्चुप्, चणप्, ४/२/२७
३३. छणुः, ३/१/१२१.	छण्, ४/१/१३२.	—	छण्, २/४/६७
३४. जातीय, ४/१/१२८.	जातीयर्, ५/३/६६	—	जातीयर्, ४/३/२६,
३५. जित् वुन्, ३/३/६४	वुञ्, ४/३/१२६	—	वुञ्, ३/३/६४
३६. जिन्, ४/२/२१.	इनुण्, ५/४/१५.	—	इनुण्, ४/४/२१
३७. फ, ३/१/८७.	क्कञ्, ४/१/६८.	आयनण्, २६०.	पयञ्, २/४/३३.
३८. य, ३/१/१५३.	ज्यङ्, ४/१/१७१.	—	ज्यङ्, २/४/६८.
३९. य, ३/१/१५३.	ण्य, ४/१/१७२.	—	ण्य, २/४/१०१.
४०. टीकण्, ३/३/१७७.	ईकक्, ४/४/५६	—	टीकक्, ३/४/६०
४१. टीट, नाट, भ्रट्, ३/४/१५१.	टीटच्, नाटच्, भ्रटच्, ५/२/३१.	—	टीटच्, नाटच्, भ्रटच्, ४/२/३२.
४२. टेन्यण्, ३/३/८८ वा०.	षेण्यण्, ४/३/१२० वा०	—	षेण्यण्, ३/३/१०२.
४३. ट्फण्, ३/३/७८.	ष्फक्, ४/२/६६	—	ष्फक्, ३/२/८.
४४. ट्यण्, ३/४/११४.	ष्यञ्, ५/१/१२४	यण् ३०१.	ष्यञ्, ४/१/१४०
४५. ठ, ३/२/६०	ठच्, ४/२/८०	—	ठच्, ३/१/६८
४६. ठ, ३/३/२.	ठप्, ४/३/२६.	—	ठप्, ३/३/१.
४७. ठ, य, ३/४/१८	ठन्, यत्, ५/१/२१.	—	ठन्, यत्, ४/१/३१.
४८. ठञ्, ३/२/१७.	ठक्, ४/२/२२.	—	ठक् ३/१/१६
४९. ठट्, ३/३/१३३.	ष्ठन्, ४/४/१०.	—	ष्ठन् ३/४/८.
५०. ठट्, ठ, ३/३/१५४.	ष्ठन्, ष्टच्, ४/४/३१.	—	ठन्, ३/४/३८.

जं० व्या०	अष्टा०	का० व्या० (च० प्र०)	चा० व्या०
५१. ठण्, ३/२/३०	ठञ्, ४/२/३५.	—	ठञ्, ३/१/३२.
५२. ठण्, ३/३/१२७.	ठक्, ४/४/२.	इकण्, २६५.	ठक्, ३/४/२.
५३. ठद्, ३/३/४५.	ठन्, ४/३/७०.	—	ठन्, ३/३/४२.
५४. ठन्, ३/४/२२.	टिठन्, ५/१/२५.	—	ठट्, ४/१/२६.
५५. ड, ४/२/६६.	डच्, ५/४/७३.	—	डच्, ४/४/६५.
५६. डतम, ४/१/१४८.	डतमच्, ५/३/६३.	—	डतमच्, ४/३/७६.
५७. डतर, ४/१/१४७.	डतरच्, ५/३/६२.	—	डतरच्, ४/३/७२.
५८. डित् मत्, ३/२/६७.	ड्मतुप्, ४/२/८७.	—	—
५९. डित् वल, ३/२/६९.	ड्वलच्, ४/२/८८.	—	—
६०. डुप, ४/१/१४४.	डुपच्, ५/३/६६.	—	—
६१. ड्वु, ३/४/२१.	ड्वुन्, ५/१/२४.	—	ड्वुन्, ४/१/३७.
६२. ढण्, ३/१/१०६.	ढक्, ४/१/१२०.	एयण्, २६१.	ढक्, २/४/५०.
६३. ढण्, ३/२/१५.	ढञ्, ४/२/२०.	—	ढञ्, ३/१/१७.
६४. टिनिण्, ३/३/८०.	ढिनुक्, ४/३/१०६.	—	ढिनुक्, ३/३/७६.
६५. ढण्, ३/१/११६.	ढृक्, ४/१/१२६.	—	एरग्, २/४/६२.
६६. णार, ३/१/११८.	आरग्, ४/१/१३०.	—	आरग्, २/४/६१.
६७. णिन्, ३/३/७७.	णिनि, ४/३/१०६.	—	णिनि, ३/३/७२.
६८. णैर, ३/१/११७.	ऐरक्, ४/१/१२८.	—	ऐरक्, २/४/५८.
६९. ण्य, ३/२/८३.	ञा, ४/२/१०६.	—	ञा, ३/२/१८.
७०. ण्य, ३/३/६६.	यक्, ४/३/६४.	—	—
७१. ण्य, ३/४/११८.	यक्, ५/१/१२८.	—	ष्यञ्, ४/१/१४४ वृ०.
७२. तनट्, ३/२/१३६.	ट्यु, ट्युल्, तुट् ४/३/२३.	—	ट्यु, तुट् ३/२/७६.
७३. तरट्, ४/१/१४५.	ष्टरच्, ५/३/६०.	—	ष्टरच्, ४/३/७३.
७४. तस्, ३/३/८२.	तसि, ४/३/११३.	—	—
७५. तिक, ४/२/४५.	तिकन्, ५/४/३६.	—	तिकन्, ४/४/२३.
७६. तुट्, य, ३/२/८१.	त्यप्, ४/२/१०४.	—	त्यप्, ३/२/१३.
७७. त्यण ३/२/७७.	त्यक्, ४/२/६८.	—	त्यक्, ३/२/७.
७८. त्वन्, ३/४/११०.	त्व, ५/१/११६.	त्व, ३००.	त्व, ४/१/१३६.
७९. थम्, ४/१/६०.	थम्, ५/३/२४-२५.	थम्, ३२६.	—
८०. थ्य, ३/४/६.	थ्यन्, ५/१/८.	—	थ्यन्, ४/१/८.
८१. फट्, ३/१/२०.	ष्फ, ४/१/१७.	—	ष्फ, २/३/१६.
८२. फण्, ३/१/७६.	फक्, ४/१/६१.	—	फक्, २/४/११६.
८३. बहु, ४/१/१२७.	बहुच्, ५/३/६८.	—	—
८४. विड, विरीस, ३/४/१५२.	बिडच्, विरीसच्, ५/२/३२.	—	—
८५. मत्, ४/१/२३.	मतुप्, ५/२/६४.	मत्तु, ३०२.	मतुप्, ४/२/६८.
८६. य, ३/२/४२.	यन्, ४/२/४२.	—	यञ्, ३/१/५०.
८७. य, ३/४/७८.	यत्, ५/१/८१.	—	यत्, ४/१/६६.

जं० व्या०	अष्टा०	का० व्या० (च० प्र०)	चा० व्या०
८८. ल, ४/१/२४	लञ्, ५/२/६६	—	लञ्, ४/२/६६.
८९. वत्, ३/४/१०६	वति, ५/१/११७.	वति, २६६.	वति, ४/१/१३५.
९०. वतु, ३/४/१६०.	वतुप्, ५/२/३६	---	वतुप्, ४/२/४३
९१. वल, ३/२/६८.	वलच्, ४/२/८६	—	—
९२. विध, भक्त, ३/२/४७	विधल्, भक्तल्, ४/२/५४	—	विधल्, भक्तल् ३/१/६३.
९३. वुञ्, ३/२/६८	वुक्, ४/२/१०३	—	वुक्, ३/२/१२.
९४. व्य, ३/१/१३३.	व्यत्, ४/१/१४४	—	व्यत्, २/४/६४.
९५. शाल, शङ्कट् ३/४/१४८.	शालच्, शङ्कटच् ५/२/२८.	—	शालच् शङ्कटच्, ४/२/२६.
९६. ष्ट्लञ्, ३/३/१०७	ष्ट्लञ्, ४/३/१४२.	—	ष्ट्लञ्, ३/३/११६.
९७. ष्य, ३/१/६३	ष्यङ्, ४/१/७८.	—	ष्यङ्, २/३/८२.
९८. सात्, ४/२/५७.	साति, ५/४/५२.	साति, ३४६.	साति, ४/४/३७.

उपर्युक्त तद्धित प्रत्ययों के तुलनात्मक अध्ययन से यह निष्कर्ष निकलता है कि—

- स्वर की दृष्टि से पाणिनि द्वारा निर्दिष्ट तद्धित प्रत्ययों के अनुबन्धों को पूज्यपाद देवन्दी ने हृत, (तद्धित) प्रत्ययों में कोई स्थान नहीं दिया है। उदाहरण के लिए अष्टाध्यायी का एनप् प्रत्यय पित् होने के कारण अनुदात्त है^१ किन्तु जैनेन्द्र व्याकरण में अनुबन्ध रहित एन^१ प्रत्यय विहित है। पाणिनि के अनुसार चित् (बहुच्)^२ तद्धित प्रत्यय से निर्मित शब्द का अन्त्य वर्ण उदात्त होता है।^३ किन्तु पूज्यपाद देवन्दी ने अनुबन्ध रहित 'बहु'^४ प्रत्यय का विधान किया है।
- पूर्ववर्ती वैयाकरणों द्वारा निर्दिष्ट 'क्' एवं 'ञ्' अनुबन्धों के स्थान पर पूज्यपाद देवन्दी ने 'ण्' अनुबन्ध दिया है (फक्, त्यक्, ढञ् एवं यक्, के लिए क्रमशः फण्, त्यण्, ढण् एवं ष्य तद्धित प्रत्ययों का निर्देश किया है)। कहीं-कहीं पर तद्धित प्रत्ययों में विद्यमान 'क्' एवं 'ण्' अनुबन्धों के स्थान पर पूज्यपाद देवन्दी ने 'ञ्' अनुबन्ध दिया है (वुक्, ष्य, अञ्, (ञ्) के लिए क्रमशः वुञ्, ष्य एवं अण् प्रत्ययों का निर्देश किया है)।
- पाणिनि एवं चन्द्रगोमी द्वारा प्रयुक्त 'ष्' अनुबन्ध के स्थान पर पूज्यपाद देवन्दी ने 'ट्' अनुबन्ध का प्रयोग किया है (ष्फक्, षेष्यण् एवं षफ के लिए क्रमशः ट्फट्, टेन्यण् एवं फट् का निर्देश किया है)।

सायंतनम्, चिरंतनम्, प्राह्णेतनः, प्रगेतनः, आदि तद्धितान्त शब्दों की सिद्धि जैनेन्द्र-व्याकरण में सरल रूप में प्रस्तुत की गई है। सायं, चिरं, प्राह्णे, प्रगे एवं कालवाची अर्थों से परे पाणिनि ने ट्यु एवं ट्युल् प्रत्ययों तथा 'तुट्' आगम का विधान किया है (सायं + ट्यु = सायं + तुट् + यु)।^१ तत्पश्चात् 'यु' को अनादेश (सायं + तुट् + अन)^२ करके सायं तनम् आदि शब्दों की सिद्धि की है। चन्द्रगोमी ने 'ट्यु' प्रत्यय एवं 'तुट्', आगम की सहायता से सायंतनम् आदि शब्दों की रचना की है।^३ चन्द्रगोमी ने भी यु को अनादेश किया

- एनबन्धतरस्यामदूरेऽपञ्चम्याः, अष्टा० ५/३/३५.
- अनुदात्तो सुप्पिती, वही, ३/१/४.
- दैनोऽदूरेऽकायाः, जं० व्या० ४/१/६६.
- विभाषा सुपो बहुच् पुरस्तात्, अष्टा० ५/३/६८.
- तद्धितस्य, वही, ६/१/१६४.
- वा सुपो बहुः प्राक्त, जं० व्या० ४/१/१२७.
- सायंचिरंप्राह्णेप्रगेव्ययैभ्यष्ट्यु ट्युलो तुट् च, अष्टा० ४/३/२३.
- युवोरनाकी, वही, ७/१/१.
- प्राह्णेप्रगेसायंचिरमसंख्याद् ट्युः, चा० व्या० ३/२/७६.

जैन प्राच्य विद्याएँ

१६५

है।^१ इस प्रकार अष्टाध्यायी एवं चांद्र-व्याकरण दोनों ही ग्रन्थों में उपर्युक्त रूपों की सिद्धि में 'यु' को 'अन' आदेश करने की आवश्यकता पड़ती है। पूज्यपाद देवनन्दी ने प्रक्रिया में सरलता एवं संक्षिप्तता लाने के उद्देश्य से उपर्युक्त रूपों की सिद्धि तनद् प्रत्यय के योग से की है।^२ तथा पाणिनि एवं चन्द्रगोमी द्वारा दो सूत्रों की सहायता से सिद्ध किए गए शब्दों को एक ही सूत्र से सिद्ध किया है।

पूज्यपाद देवनन्दी ने 'नञ् उपपद्' पूर्वक चपल शब्द को जित्, णित् तद्धित प्रत्यय परे रहते नित्य वृद्धि (ऐप्) का विधान किया है तथा पूर्वपद नञ् (अ) को विकल्प से वृद्धि का 'विधान' करके 'अचापलम्' एवं 'आचापलम्' तद्धितान्त शब्दों की सिद्धि की है।^३ पूज्यपाद देवनन्दी से पूर्ववर्ती वैयाकरणों ने उपर्युक्त दोनों शब्दों के लिए कोई नियम नहीं दिया है। इससे यह सर्वथा अनुमेय है कि पूज्यपाद देवनन्दी के समय में 'अचापलम्' एवं 'आचापलम्' दोनों शब्द भाषा में प्रयुक्त होते थे।

जैनेन्द्र-व्याकरण में वैदिक प्रयोग संबंधी नियमों का स्वरूप

जैनेन्द्र-व्याकरण लौकिक भाषा का व्याकरण है। पूज्यपाद देवनन्दी ने स्वर एवं वैदिक प्रक्रिया संबंधी नियमों को जैनेन्द्र-व्याकरण में स्थान न देते हुए भी वैदिक साहित्य में प्रयुक्त होने वाले कुछ शब्दों को 'कृतप्रयत्ययों के प्रसंग में प्रस्तुत किया है। इस प्रकार के शब्द सान्नाय्य, धाय्या, आनाय्य,^४ कुण्डपाय्य, सञ्चाय्य, परिचाय्य, उपचाय्य, चित्य, अग्निचित्ये^५ एवं ग्रावस्तुत^६ हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि पूज्यपाद देवनन्दी के समय में लौकिक संस्कृत में इन शब्दों का प्रयोग होता था। पं० अंबालाल प्रेमचन्द्र शाह के अनुसार जैनेन्द्र-व्याकरण एक लौकिक-व्याकरण है तथा इसमें छान्दस् प्रयोगों को भी लौकिक मानकर सिद्ध किया गया है।^७

पूज्यपाद देवनन्दी ने 'सास्य देवता'^८ प्रकरण के अन्तर्गत शुक्र, अपोनप्तृ, अपान्नप्तृ महेन्द्र, सोम वायु, उषस्, द्यावापृथिवी, सुनाशीर, मरुत्वत्, अग्नीषोम, वास्तोष्पति, गृहमेध आदि देवताओं के नामों का उल्लेख किया है।^९ जैनेन्द्र-व्याकरण में 'तेन प्रोक्तम्' (जै० व्या० ३।३।७६) सूत्र के प्रसंग में वैदिक शाखाओं एवं ब्राह्मण-ग्रन्थों के नामों का भी निर्देश उपलब्ध होता है।^{१०} यद्यपि उपर्युक्त नामों का जैन साहित्य के लिए किञ्चिद् मात्र भी उपयोग न था तथापि अष्टाध्यायी की सामग्री की रक्षा करने के उद्देश्य से पूज्यपाद देवनन्दी ने उन नामों को जैनेन्द्र व्याकरण में स्थान दिया है।

जैनेन्द्र-व्याकरण में 'कौ वेतौ (जै० व्या० १।१।२४), 'उञ्जः' (जै० व्या० १।१।२५) एवं 'ऊम्' (जै० व्या० १।१।२६) सूत्र दिए गए हैं। पं० युधिष्ठिर मीमांसक के अनुसार उपर्युक्त सूत्रों के पाठ एवं वृत्ति से यह प्रतीत होता है कि इनके प्रयोग का विषय लोकभाषा है किन्तु प्रतिपाद्य विषय वैदिक है। उनका कथन है कि जिस प्रकार पूज्यपाद देवनन्दी ने अष्टाध्यायी के 'शे' (अष्टा० १।१।१३) तथा 'ईद्वौ च सप्तम्यर्थे' (अष्टा० १।१।१६) सूत्रों के प्रतिपाद्य विषय के लिए सूत्रों की रचना नहीं की वैसे ही उपर्युक्त शब्दों के लिए भी न करते। पं० युधिष्ठिर मीमांसक के अनुसार उपर्युक्त सूत्रों के उल्लेख से यह सुस्पष्ट है कि पूज्यपाद देवनन्दी ने इन सूत्रों को लौकिक भाषा से सम्बद्ध माना है, किन्तु यह उचित नहीं है क्योंकि लोक में ऐसे प्रयोग उपलब्ध नहीं होते।^{११}

१. यशोरनाकावसः, चा० व्या० ५/४/१.
२. सायञ्चरम्प्राह्णे प्रमेक्ष्यस्तनद्, जै० व्या० ३/२/१३६.
३. नञ् : क्षुचीश्वरक्षेत्रक्षुक्षल वपल निपुणानाम्, वही, ५/२/३५.
४. पाय्यसान्नाय्यनिकाय्य धाय्याऽऽनाय्य प्रणाय्या मानहविनिवाससाभिघेन्पनिन्याऽऽसम्मतिषु, वही, २/१/१०४.
५. कुण्डपाय्या सञ्चाय्यपरिचाय्योपचाय्य चित्याग्निचित्याः, वही, २/१/१०१.
६. ग्रावस्तुतः किवप्, वही, २/२।१५६.
७. शाह, अंबालाल प्रे०, जै० सा० वृ० ६०, पं० भा०, पृ० ६.
८. सास्य देवता, जै० व्या० ३/२/१६.
९. इ०—वही, ३/२/२१-२७.
१०. इ०—वही; ३/३/७६-८०.
११. मीमांसक, युधिष्ठिर, जै० म० वृ०, भूमिका, पृ ४६.

अष्टाध्यायी के सभी वैदिक प्रयोग संबंधी नियमों के लिए पूज्यपाद देवनन्दी ने सूत्र नहीं दिए हैं, किन्तु कुछ वैदिक नियमों के समकक्ष सूत्र जैनेन्द्र-व्याकरण में उपलब्ध होते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि इस प्रकार के प्रयोग उस समय लोक-भाषा में प्रचलित थे। इस प्रकार के सूत्रों की सूची निम्न निर्दिष्ट है—

जै० व्या०	अष्टा०
१. अनन्तस्यापि प्रश्नाख्यानयोः, ५।३।१०३.	अनन्तस्यापि प्रश्नाख्यानयोः, ८।२।१०५
२. एचोऽदेः पूर्वस्यात्परस्येदुतौ, ५।३।१०४.	एचोऽप्रगृह्यस्यादूराद्धूते पूर्वस्यार्धस्यादुत्तरस्येदुतौ, ८।२।१०७.
३. ओमभ्यादाने, ५।३।१६५.	ओमभ्यादाने, ८।२।८७
४. कोपाऽसूयासम्मतौ स्त्री वा, ५।३।१०१.	स्वर्गितमाम्नेडिते सूयासंमतिकोप कृत्सनेषु, ८।२।१०३.
५. क्षियाशीः प्रैषेषु मिडाकाङ्क्षम् ५।३।१०२.	क्षियाशीः प्रैषेषु तिडाकाङ्क्षम्, ८।२।१०४.
६. चिदित्युपमार्थे, ५।३।१००.	चिदिति चोपमार्थे प्रयुज्यमाने, ८।२।१०१.
७. पूजिते, ५।३।१६६	अनुदात्तं प्रश्नान्ताभिपूजितयोः, ८।२।१००.
८. प्रतिश्रवणे ५/३/६८	प्रतिश्रवणे च, ८/२/६६
९. बाह्वन्तकद्रुकमण्डलुभ्यः, ३/१/६०	कद्रुकमण्डत्वोश्छन्दसि, ४/१/७१
१०. मन्वन्क्वनिदिवचः क्वचित् २/२/६२	आतो मनिन्वनिद्वनिपश्च, ३/२/७४
११. यवावचि सन्धौ ५/३/१०५	तयोर्वावचि संहितायाम् ८/२/१०८
१२. वा हेः पृष्टप्रत्युक्तौ ५/३/६६	विभाषा पृष्टप्रतिवचने ८/२/६८
१३. विचार्य पूर्वम्, ५/३/६७	पूर्व तु भाषायाम्, ८/२/६८
१४. हेमन्तात्तखम् ३/२/१३८	हेमन्ताच्च ४/३/२१

अभयनन्दी ने उपर्युक्त सूत्रों के वैदिक उदाहरण प्रस्तुत किए हैं। अष्टाध्यायी के सूत्रों में निर्दिष्ट 'छन्दसि' शब्द का पूज्यपाद देवनन्दी ने निराकरण किया है।

जैनेन्द्र व्याकरण का परवर्ती इतिहास—

जैन विद्वान् की कृति होने के कारण जैनेन्द्र व्याकरण में जैन-प्रवृत्ति का होना स्वाभाविक ही है। यही कारण है कि जैनेन्द्र व्याकरण ब्राह्मणवाद के प्रभाव से सर्वथा मुक्त है। उक्त-व्याकरण ग्रन्थ पर लिखी गई टीकाओं से इस व्याकरण की प्रसिद्धि सहज ही अनुमेय है। अभयनन्दी कृत महावृत्ति जैनेन्द्र व्याकरण की एक विस्तृत एवं श्रेष्ठ टीका है। उक्त टीका में पाणिनीय व्याकरण की सामग्री की रक्षा करने का पूर्ण प्रयत्न किया गया है। जैनेन्द्र महावृत्ति पर काशिकावृत्ति का पर्याप्त प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। ऐसा होते हुए भी अभयनन्दी-कृत जैनेन्द्र महावृत्ति में ऐसी सामग्री भी उपलब्ध है, जिसको काशिकावृत्ति में स्थान नहीं दिया गया है। उदाहरणस्वरूप सूत्रों के उदाहरणों में जैन तीर्थंकरों, महापुरुषों तथा जैन-ग्रन्थों के नाम उपलब्ध होते हैं। इसके साथ ही साथ कात्यायन के वार्त्तिक और पतंजलि-कृत महाभाष्य की इष्टियों में सिद्ध किए गए नए रूपों को पूज्यपाद देवनन्दी ने सूत्रों में अपना लिया है। इसलिए भी यह व्याकरण ग्रन्थ जैन सम्प्रदाय में विशेष लोकप्रिय रहा होगा। डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल के अनुसार 'इसमें सन्देह नहीं कि आचार्य पूज्यपाद पाणिनीय व्याकरण, कात्यायन के वार्त्तिक और पतंजलि के भाष्य के पूर्ण मर्मज्ञ थे, एवं जैन धर्म और दर्शन पर भी उनका असामान्य अधिकार था। वे गुप्त युग के प्रतिभाशाली महान् साहित्यकार थे जिनका तत्कालीन प्रभाव कोंकण के नरेशों पर था, किन्तु कालान्तर में जो सारे देश की विभूति बन गए।' अनेक विद्वानों ने किसी आचार्य की व्याकरण-शास्त्र में निपुणता को दर्शाने के लिए पूज्यपाद देवनन्दी को उपमान रूप में ग्रहण किया है। श्रवणबेल्गोल ग्राम के उत्तर में स्थित चन्द्रगिरि पर्वत के शक संवत् १०३७

१. अग्रवाल, वासुदेवशरण, जै० म० वृ, भूमिका, पृ० १२.

के शिलालेख (संख्या ४७) तथा शक संवत् १०६८ के शिलालेख (संख्या ५०) के अनुसार व्याकरण-विषयक ज्ञान में मेघचन्द्र की पूज्यपाद देवनन्दी से उपमा देते हुए, पूज्यपाद देवनन्दी को सभी वैयाकरणों में शिरोमणि कहा गया है।^१ श्रवणबेलगोल ग्राम के ही शक संवत् १०२२ के शिलालेख (संख्या ५५) के अनुसार जिनचन्द्र के जैनेन्द्र व्याकरण विषयक ज्ञान को स्वयं पूज्यपाद देवनन्दी के ज्ञान का ही समरूप बतलाया है।^२ श्रुतकीर्ति (१२ वीं शताब्दी ई०) ने पंचवरतु प्रक्रिया में जैनेन्द्र-व्याकरण पर लिखे गए न्यास, भाष्य, वृत्ति, टीका आदि की ओर निर्देश किया है।^३ मुग्धबोध के रचयिता बोपदेव (१३ वीं शताब्दी ई०) ने पूज्यपाद देवनन्दी को पाणिनि प्रभृति महान् वैयाकरणों की कोटि में रखा है।^४ मुग्धबोध की पारिभाषिक (एकाक्षरी) संज्ञाओं पर जैनेन्द्र व्याकरण की पारिभाषिक संज्ञाओं का पर्याप्त प्रभाव पड़ा है। उपरिनिर्दिष्ट प्रभावों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि १३ वीं शताब्दी ई० तक जैनेन्द्र व्याकरण का पठन-पाठन प्रचलित रहा। परन्तु १३ वीं शताब्दी ई० के उपरान्त उक्त व्याकरण के पठन-पाठन के विशेष प्रमाण नहीं मिलते।^५ इसके निम्ननिर्दिष्ट कारण हैं—

१. (लौकिक संस्कृत भाषा के प्रसंग में) जैनेन्द्र-व्याकरण का मूल आधार अष्टाध्यायी है। जैनेन्द्र व्याकरण में वैदिक और स्वर प्रक्रिया सम्बन्धी नियमों का प्रतिपादन नहीं किया गया है, जबकि अष्टाध्यायी वैदिक और लौकिक संस्कृत दोनों भाषाओं के लिए उपयोगी व्याकरण ग्रन्थ है। सम्भवतः इसी कारण से विद्वानों को अष्टाध्यायी के अतिरिक्त अन्य व्याकरण ग्रन्थ को पढ़ने की आवश्यकता प्रतीत नहीं हुई।
२. संस्कृत विद्वानों में त्रिमुनि व्याकरण के लिए आदर की भावना थी तथा अष्टाध्यायी को सम्पूर्ण भारत में पठन-पाठन की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण स्थान प्रदान किया गया तथा जैनेन्द्र व्याकरण जैन सम्प्रदाय तक ही सीमित रह गया।
३. पूज्यपाद देवनन्दी ने जैनेन्द्र व्याकरण के सूत्रों में संक्षिप्तता लाने की दृष्टि से एकाक्षरी संज्ञाओं का प्रयोग किया; परिणामस्वरूप सूत्रों में संक्षिप्तता का समावेश तो हुआ किन्तु सूत्र क्लिष्ट बन गए। साधारण पाठकों को संज्ञाओं की दृष्टि से अष्टाध्यायी की तुलना में जैनेन्द्र व्याकरण अपेक्षाकृत क्लिष्ट प्रतीत हुआ।
४. शाकटायन व्याकरण के प्रकाश में आने के उपरान्त तो जैनेन्द्र व्याकरण का महत्त्व और भी कम हो गया। धार्मिक भावना से अभिभूत होकर श्वेताम्बर सम्प्रदाय के अनुयायियों ने शाकटायन व्याकरण को ही अध्ययन-अध्यापन की दृष्टि से महत्त्व दिया।
५. रामचन्द्र, भट्टोजि दीक्षित प्रभृति विद्वानों द्वारा प्रक्रिया ग्रन्थों की रचना के उपरान्त शिक्षा संस्थानों में प्रक्रिया विधि से ही पठन-पाठन होने लगा। अतएव शिक्षा संस्थानों में जैनेन्द्र व्याकरण की उपादेयता को महत्त्व नहीं दिया गया।

आधुनिक काल में जैनेन्द्र व्याकरण का अध्ययन केवल दक्षिणी भारत के दिगम्बर जैन सम्प्रदाय तक ही सीमित है।^६ भारतीय ज्ञानपीठ से प्रकाशित जैनेन्द्र महावृत्ति ही उक्त व्याकरण का उत्तम संस्करण है।

१. सर्व-व्याकरणे विपश्चिदधिपः श्री पूज्यपादस्स्वयं त्रैविद्योत्तममेघचन्द्रमुनिपो वादोभपञ्चाननः ॥ जैन शिलालेखसंग्रह, प्र० भा०, सम्पा०—हीरालाल जैन, दम्बई, १९२८ पृ० ६२, ७५.
२. जैनेन्द्र पूज्य (पादः).....। बही, पृ० ११९.
३. मूलस्तम्भसमुद्भूतं प्रविशसन्त्यासोरत्नकितिश्रीमद्वृत्तिकपाटसपुटयुतं भाष्योऽथ शय्यातलम् ।
टीकामालमिहाराक्षुरचितं जैनेन्द्रशब्दागमं प्रासादं पृथुपंचवस्तुकमिदं सोपानमारोहतात् ॥
प्र० श्री, नाथूराम, जै० सा० ६०, पृ० ३३ पर उद्धृत.
४. इन्द्रचन्द्रः काशकृत्स्नापिशली-शाकटायनः ।
पाणिन्यमर जैनेन्द्रा जयन्त्यष्टादिशाब्दिकाः ॥ बोपदेव, कविकल्पद्रुम, पृ० १.
५. बेलवालकर, एस० के०, सि० सं० ग्रा०, पृ० ५६.
६. बेलवालकर, एस० के०, सि० सं० ग्रा०, पृ० ५६.